VISHVA–JYOTI REGD NO. PB-HSP-01 ISSN 0505-7523
(1.1.2024 TO 31.12.2026)
R.N. No. 1/57

मासिक पत्रिका (JOURNAL)

विश्वज्योति

(PEER REVIEWED JOURNAL)

(अभिनिर्देशित मासिक पत्रिका)

72वां वर्ष, अंक 11, फरवरी, 2024

संचालक–सम्पादक
प्रो. इन्द्रदत्त उनियाल

सह–सम्पादक
प्रो.(डॉ.) प्रेम लाल शर्मा

प्रकाशन स्थान
विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान
साधु आश्रम, होश्यारपुर–146021 (पंजाब, भारत)

ISSN 0505-7523

प्रकाशक
विश्वेश्वरानन्द–वैदिक–शोध–संस्थान
साधु आश्रम, होश्यारपुर–146021 (पंजाब, भारत)
(अभिनिर्देशित पत्रिका)
(PEER REVIEWED JOURNAL)

प्रकाशन–परामर्शदात्री समिति :

डॉ. दर्शन सिंह निर्वैर, आजीवन सदस्य, वि.वै.शोध संस्थान कार्यकारिणी समिति, साधु आश्रम, होश्यारपुर।

डॉ. (श्रीमती) कमल आनन्द, आदरी प्रोफैसर, (वि. वै. शोध संस्थान, होश्यारपुर), 1581, पुष्पक कम्पलैक्स, सैक्टर 49–बी, चण्डीगढ़।

प्रो. जगदीश प्रसाद सेमवाल, आदरी प्रोफैसर, (वि. वै. शोध संस्थान, होश्यारपुर), एफ–13, पंचशील इन्कलेव, जीरकपुर (मोहाली) पंजाब।

प्रो. (सुश्री) रेणू कपिला, कोठी नं. बी–7/309, डी.सी. लिंक रोड, होश्यारपुर (पंजाब)।

प्रो. रघवीर सिंह, आदरी प्रोफैसर, बी.वी.आर.आई., साधु आश्रम, होश्यारपुर (पंजाब)।

डॉ. जयप्रकाश शर्मा, 1486, पुष्पक कम्पलैक्स, सैक्टर 49–बी, चण्डीगढ़।

प्रि. उमेश चन्द्र शर्मा, पी.ई.एस (1), रिटा., शिवशक्ति नगर, होश्यारपुर।

प्रो. (डॉ.) ऋतुबाला, वी.वी.बी.आई. एस. एण्ड, आई.एस. (पं.वि.पटल), साधु आश्रम, होश्यारपुर।

प्रो. ललित प्रसाद गौड़, संस्कृत विभाग, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र (हरियाणा)।

डॉ. रविन्द्र कुमार बरमोला, वी.वी.बी.आई. एस. एण्ड, आई.एस. (पं.वि.पटल), साधु आश्रम, होश्यारपुर।

दूरभाष : कार्यालय : 01882 – 223582, 223606
संचालक (निवास) : 01882–244750
E-mail : vvrinstitute@gmail.com ,
vvr_institute@yahoo.co.in
Website : www.vvrinstitute.com
मुद्रक : विश्वेश्वरानन्द वैदिक–शोध–संस्थान प्रैस, होश्यारपुर
(पंजाब)

प्रकाशन विषयक विशिष्ट नियम

१ विश्वज्योति अभिनिर्देशित पत्रिका **(Peer Reviewed Journal)** विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित की जाती है।

२ पत्रिका **(JOURNAL)** प्रत्येक मास की २८ तारीख को (अनिवार्य रूप से) प्रकाशित होती है।

३ इसका प्रकाशन वर्ष अप्रैल मास से प्रारम्भ होता है।

४ इसके अप्रैल-मई एवं जून-जुलाई के दो वार्षिक विशेषांक प्रकाशित होते हैं।

५ भविष्य में जो भी प्राध्यापक अथवा शोध-छात्र पदोन्नति या यत्र-तत्र नियुक्तिहेतु विश्वज्योति में लेख को छपवाना चाहते हैं, वे कम से कम ५ पृष्ठ का अथवा अधिक से अधिक ७ पृष्ठ तक का सटिप्पण अपना लेख भेजें, टिप्पण नीचे या लेख के अन्त में दे सकते हैं। ऐसे लेखों पर ही (Peer Reviewed Journal) का ISSN नम्बर छापा जायेगा।

विशेषः स्वतन्त्र रूप से लेख भेजने वाले विद्वान् लेखकों के लिए यह बन्धन नहीं है। वे स्वतन्त्रता से अपनी रचना, कविता एवं नाटक भेज सकते हैं।

६ संस्थान के पैटर्न सदस्य, आजीवन-सदस्य तथा वार्षिक-सदस्यों को विश्वज्योति नि:शुल्क नियमतः भेजी जाती है।

७ अन्य संस्थाओं द्वारा प्रकाशित पत्रिकाओं के साथ इसका विनियम भी किया जाता है।

८ विश्वज्योति सम्बन्धी पत्रव्यवहार संचालक अथवा सम्पादक के पते पर किया जा सकता है।

९ किसी संस्था, पुस्तकालय एवं विद्वान् के आग्रह पर हिन्दी के प्रचार एवं प्रसार को ध्यान में रखते हुए उनको विश्वज्योति नि:शुल्क भी भेजी जा सकती है।

१० विश्वज्योति में समालोचनार्थ समालोच्य पुस्तक या ग्रन्थ की दो प्रतियाँ भेजनी अनिवार्य हैं। जिस अंक में समालोचना प्रकाशित की जाती है, वह अंक लेखक को नि:शुल्क भेजा जाता है।

११ विश्वज्योति का मूल्य निम्न प्रकार से है- भारत में एक प्रति का मूल्य १० रुः विदेश में ३ डालर। भारत में वार्षिक सदस्यता १०० रुः तथा विदेश में वार्षिक सदस्यता- ३० डालर। भारत में आजीवन सदस्यता १२०० रुः तथा विदेश में ३०० डालर है। विशेषाङ्क २ भाग भारत में ५० रुः तथा विदेश में १२ डालर हैं।

विशेषः- (क) लेखक को पारिश्रमिक देने का नियम नहीं है।

(ख) प्रकाशित लेख की एक प्रति लेखक को भेजी जाती है।

सम्पादक

भारत में एक प्रति का मूल्य : 10 रुपये.
विदेश में एक प्रति का मूल्य : ३ डालर.

विश्वज्योति

इदं श्रेष्ठं ज्योतिषां ज्योतिरागात्॥ (ऋ. १,११३,१)

वर्ष ७२ | होश्यारपुर, मागशीर्ष, २०८०; फरवरी २०२४ | संख्या-११

दैवीः षडुर्वीरुरु नः कृणोत, विश्वे देवास इह मादयध्वम्।
मा नो विददभिभा मो अशस्तिर्, मा नो विदद्वृजिना द्वेष्या या।।

(अर्थ. ५,३,२५)

हे छः विस्तार-मयी दिव्य दिशाओ ! हमारा भी विस्तार करो । हे सब देवताओं ! यहां (हमारे मध्य में) आनन्द का विस्तार करो। (किसी की भी) शत्रुता और बुरी उक्ति हमारा कुछ न बिगाड़ सके। (किसी के भी द्वारा किए गए) द्वेष-मूलक दुष्कर्म हमारा कुछ न बिगाड़ सकें।

(वेदसार - विश्वबन्धुः)

नाऽसतो विद्यते भावो नाऽभावो विद्यते सतः।
उभयोर् अपि दृष्टोऽन्तस् त्व् अनयोस् तत्त्व-दर्शिभिः।।

(गीता. २.१६)

(हे अर्जुन), (जो सृष्टि में) है (ही) नहीं, (वह कभी भी) वर्तमान नहीं हो सकता। (इसी प्रकार जो सृष्टि में) विद्यमान है (उसका कभी भी) अभाव नहीं हो सकता। इन दोनों (सच्चाइयों के सम्बन्ध में साक्षात्) ज्ञान तत्वदर्शी (विद्वानों) का ही हो पाता है।

विषय-सूची

लेखक	विषय	विधा	पृष्ठांक
डॉ रामसनेही लाल शर्मा 'यायावर'	दोहा का अतीत, वर्तमान और भविष्य	लेख	७
डॉ. उमा रानी	श्रीमद्भगवद्गीता में विश्वबन्धुत्व की भावना	लेख	१५
डॉ. ज्योति गोगिया	वैचारिक प्रदूषण-कारण व निवारण	लेख	१८
श्री कमलप्रसाद चौरसिया	अथ पार्थ उवाच	लेख	२१
श्री सीताराम गुप्ता	धर्म की रक्षा के अभाव में असंभव है हमारी स्वयं की रक्षा	लेख	२६
श्री अखिलेश निगम 'अखिल'	नशा मुक्ति हेतु मनोवैज्ञानिक उपाय	लेख	२९
डॉ. मधुसूदन म. व्यास	शतकत्रय के रचयिता भर्तृहरि का काव्यवैशिष्ट्य	लेख	३४
डॉ. आदित्य आंगिरस	पितृसूक्त का वर्तमान संदर्भ	लेख	३७
डॉ. विजयप्रकाश त्रिपाठी	ज्ञान और भक्ति में अन्तर	लेख	४२
श्री कृष्णचन्द टवाणी	आलोचना करना भी एक कला है	लेख	४४
डॉ. ऋषिमोहन श्रीवास्तव	श्रेष्ठता क्या है ?	लेख	४६
डॉ. रामसनेही लाल शर्मा	रसवन्त रसा का हो तन-मन	वाणी-वन्दन	४७
श्री देवेन्द्र कुमार मिश्रा	एक जीवन में	कविता	४८
डॉ. दर्शन सिंह 'आशट'	पारस खुश है	कहानी	४९
	पुस्तक-समीक्षा		५१
	संस्थान-समाचार		५२
	परिपत्र		५३-५४

PEER REVIEWED JOURNAL
ISSN 0505-7523

दोहा का अतीत, वर्तमान और भविष्य

- रामसनेही लाल शर्मा 'यायावर'

दोहा काव्य का 'वामन' विराट है। वह अपने लघ्वाकार में अर्थ की असीम सम्भवनाएँ समेटे रहता है। अनेक नामों से विभूषित यह छन्द अपनी कसावट, कहन, भाषा और अर्थ-दीप्ति में अपना प्रतिद्वन्दी नहीं रखता। इसका शरीर शब्द है, अर्थ इसका मन है, लय प्राण है, रस आत्मा है, उक्ति वैचित्र्य सौन्दर्य है, कल्पना उसकी नेत्र-ज्योति है, व्याकरण नाक है, भाव हृदय है और विचार मस्तिष्क है। दोहा आकार में वामन रहकर तीनों लोकों की भूमि को अपने अथ-पगों से नापने का सामर्थ्य रखता है। प्रभाव-क्षमता इसकी अद्भुत है। यह सारग्राही है। कल्पना की समाहार शक्ति और भाषा की समास शक्ति, इसको सामर्थ्यवान बनाती है। मंत्र, कारिका, सूत्र आदि की तरह इसे न्यूनतम शब्दों में ही अधिकतम अर्थ-व्यंजना करनी होती है। संक्षिप्ति इसको गौरव देती है। मंत्र, सूत्र आदि से आगे बढ़कर इसे लय और छन्द को साधना होता है। संस्कृत में दोहा के लिए दोग्धक के अतिरिक्त, द्विपथा, द्विपथक, द्विपदिक आदि शब्द भी प्रचलित हैं। आगे चलकर इसे दोहक, दोहड़ा, दोहयं, दोहउ, दुवह, दोहय आदि नाम भी मिले। सोरठा, अमृतध्वनि, वरवै आदि दोहा पारिवारिक छन्द हैं। आधुनिक युग में जब नई कविता और उसकी सहवर्ती अन्य अकविता, क्षणिका, बौद्धिक कविता आदि के आन्दोलन ने छन्द की कविता से बहिष्कृत करने का प्रयास किया तो क्रिया की प्रतिक्रिया स्वरूप छन्द की मर्यादा पूरी सामर्थ्य के साथ पुनर्प्रतिष्ठित हुई तब दोहा न केवल समकालीन कविता का प्रमुख आयाम ही बना। बल्कि दोहा के चरणों को तोड़ तोड़कर नयी-नयी संरचनाओं से नये-नये छन्द भी गढ़े गये जैसे दोहे के विषम चरणों की तीन आवृत्तियों (13+13+13= 39 मात्रा) की संरचना से दिल्ली के जनपुरी मोहल्ले के निवासी विद्वान् रचनाकार स्व. ओम प्रकाश भाटिया 'अराज' ने 'जनक' छन्द का गठन किया जिसमें विषम पंक्तियों में तुक मिलायी जाती है। इसी तरह डा. मिर्जा हसन नासिर ने दोहा के समचरण अर्थात् 11 मात्रा की तीन पंक्तियों की आवृत्ति से त्रिपदा छन्द गठित किया और 'नासिर त्रिपदा छन्द' से एक पुस्तिका भी प्रकाशित की। इसी तरह छन्द शास्त्र में उल्लाला और अहीर छन्द भी दोहा परिवारीय हैं।

लिखित रूप में प्रथम दोहा कालिदास के 'विक्रमोर्वशीयम्' नाटक के चतुर्थ अंक में मिलता है। वहाँ अपनी प्रेयसी नायिका उर्वशी के

वियोग में पीड़ित और व्यथित विक्रम जब आकाश में उमड़ते विद्युन्मण्डित मेघाच्छन्न आकाश को देखता है तो अनायास उसकी पीड़ा और अधिक घनीभूत हो उठती है और वह बादलों की ओर देखकर अनायास कह उठता है–

महं जाणिअ मिअलो अणिणिसिअरू कोई हरेइ।
जवणुणव तड़िसामलि धाराहरू वरिसेइ ।।

अर्थात् मुझ वियोग–विक्षिप्त को वर्षाफल में जब काले मेघों के मध्य चमकती हुई बिजली दिखायी दी तो ऐसा प्रतीत हुआ कि कोई काले रंग का निशाचर मेरी गौरवर्णा उर्वशी का अपहरण किए ले जा रहा है।

कालिदास का समय सुनिश्चित नहीं है। विभिन्न विद्वान् उनका कालखण्ड प्रथम शताब्दी ई.पू. से लेकर, तीसरी या छठवीं शताब्दी तक कहीं भी मानते हैं। जनश्रुतियों के अनुसार यदि वे विक्रमादित्य (चन्द्रगुप्त द्वितीय) के सखा और दरबारी कवि थे तो उनका समय चौथी शताब्दी का अन्तिम और पाँचवी शताब्दी का प्रथमांश ठहराता है क्योंकि चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य का समय 375 ई. से 413 ई. है। इसका अर्थ है कि दोहा का उद्भव काल यही है। परन्तु स्मरणीय यह है कि यह लिखित दोहा का उद्भव काल है। मौखिक रूप से ये कितनी शताब्दी पूर्व से जन–मन को अनुरंजित कर रहा था, नहीं कहा जा सकता। दोहा लोकप्रिय छन्द है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने इसे आभीरों का लोक छन्द माना है। यह प्राकृत का लाड़ला और अपभ्रंश का पोष्य छन्दं रहा है। अपभ्रंश में इसकी अत्यन्त समृद्ध परम्परा रही है। प्राकृत में भी यह प्रभूत मात्रा में रहा होगा परन्तु आज प्राकृत का दोहा साहित्य उपलब्ध नहीं है। फिर भी विक्रम की आठवीं शताब्दी के समय सिद्धाचार्य 'सरह' का एक दोहा उपलब्ध है–

जहि मन, पवन न संचरइ,
रवि ससि नाइ पवेस।
ताहि बढ़ चित विसामकरू,
सरहे कहिय भुवेस।।

इस दोहे में हिन्दी का पूर्वभास मिल जाता है। बारहवीं शताब्दी के आचार्य हेमचन्द्र सूरि उद्भट जैन विद्वान्, महान् कवि और व्याकरणवेत्ता हैं। वे गुजरात के सोलंकी राजा सिद्धराज जयसिंह के समकालीन थे। सिद्धराज जयसिंह के भतीजे कुमारपाल के समय में भी वे रहे। उन्होंने एक बड़ा प्रामाणिक व्याकरण ग्रन्थ 'सिद्ध हेमचन्द्र शबदानुशासन' लिखा है। जिसमें संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश तीनों का समावेश है। उन्होंने इस ग्रन्थ में अपभ्रंश का एक उत्तम दोहा उद्धृत किया है–

भल्ला हुआ जु मारिया, बहिणि म्हारा कंतु।
लज्जेज तु वयंसिउहु, जइ भग्गा घरू अंतु।।

एक नायिका अपने पति के युद्ध में बलिदान होने का समाचार पाकर कहती है, हे बहिन! अच्छा हुआ जो मेरा मपिद युद्धक्षेत्र में मारा गया। यदि वह युद्ध का मैदान छोड़कर भागकर घर आता तो मैं अपनी समवयस्का सखियों में लज्जित होती। यह दोहा न केवल 12वीं शताब्दी में दोहा

की दमदार उपस्थित दर्ज कराता है अपितु यह तत्कालीन समाजिक अवस्था का भी एक चित्र उपस्थित करता है। संवत् 1241 वि. में सोमप्रभ सूरि नामक कवि ने 'कुमारपाल प्रतिबोध' ग्रन्थ लिखा। इसमें कुछ अपभ्रंश के दोहे भी है। यथा-

बेस विसि दुह बारियइ, जइबि मनोहर गत्त।
गंगाजल पक्कालियवि सुणिहि कि होइ पवित्त।।

(मनोहर गात होते हुए भी ऊपरी वेष बनाने वाले से बचिए। गंगाजल में धुली हुई कुतियों क्या पवित्र हो सकती है)

संवत् 990 वि. आचार्य शुक्ल के अनुसार तथा सन् 933 ई. राहुल सांकृत्यायन के अनुसार मालवा की धारा नगरी में एक जैन कवि हुए देवसेन। इन्होंने श्रावकाचार नामक एक ग्रन्थ की रचना की। समूचा ग्रन्थ दोहों में ही सृजित है। बाद में इन्होंने एक और ग्रन्थ 'दब्ब सहाब पकास' (द्रव्य स्वभाव प्रकाश) भी दोहों में ही सृजित किया। इनके दोहों की भाषा सहज अपभ्रंश है। यथा-

मण वय कामहि, दय करहि, चे मण ढुक्कइ पाउ।
उरि सण्णाहि बद्धइण अवसि न लगाइ धाउ।।

अपभ्रंश में दोहों के विषय, सदाचार, नीति, ओज, आध्यात्मिक, चिन्तन, सूक्ति या अन्योक्ति ही रहे।

अपनी परम्परा में विकासशील रहता हुआ दोहा हिन्दी-काव्य का लाड़ला बना। आज उसका संरचनात्मक स्वरूप 13-11 मात्रा पर यति के साथ 24-24 मात्रा की दो पंक्तियों और चार चरणों के छन्द के रूप में निर्धारित हो चुका है परन्तु दोहा प्रारम्भ से ही ऐसा नहीं था। वास्तव में वह मौखिक व गेय अधिक रहा इसलिए उसका छान्दसिक स्वरूप-निर्धारण कुछ समय बाद हुआ, प्रारम्भ में तो उसमें मात्रायें घटती-बढ़ती भी नहीं यथा-

अमी अधर अस राजा, सब जग आस करेइ। = 12 + 11 = 23
केहि कहँ कमल विकासा, को मधुकर रस लेइ। = 12 + 11 = 23 - जयसी
सतगुरू वपुरा क्या करै, जो सिषही माँहै चूक। = 13 + 13 = 26
भवै त्यूँ वपुरा क्या करै, ज्यूँ बंसि बजाई फूक। = 12 + 13 = 25 - कबीर
अंदेसडा न भाजिसी, संदेसो कहियाँ। = 13 + 10 = 23
कै हरि आया भाजिसीं, कै हरि ही पास गया। = 13 + 12 = 25 - कबीर
परिमल वास लेइ वह जानइ षट विदक नारि। = 16 + 11 = 27
कर नहिं जनउ सोहागिन नित सो दई विचारी सो सँवारि। = 16 + 11 = 27 - कुतुबन

इस दिशा में कुछ प्रयोग आधुनिक युग के कवियों ने भी किए है। यथा

धमनी में तंत्री बजी, तू रहा लगाए कान।
बलिहारी मैं कौन तू, मेरा जीवन प्रान।। - जयशंकर प्रसाद

परन्तु वर्तमान युग में अब दोहा का स्वरूप 24-24 मात्रा का ही निर्धारित हो गया है। छन्द प्रभाकर के रचनाकार जगन्नाथ प्रसाद 'भानु' ने दोहे में प्रयुक्त लघु + गुरू वर्णों की गणना के आधार पर दोहे के 23 भेद किए हैं। उनके अनुसार-

भ्रमर, सुभ्रासर, शरभ, श्येन, मंडक बखानहु।
मर्कट, करभ सु और नरहिं, हंसहि परिमानहुँ
गमहु गयंद सु और पयोधर, बल अवरेषुहु
वानर, त्रिकल, प्रतच्छ कच्छपहु मच्छ विशेषहु
शार्दूल सु अरिवर व्याल जुतवर बिडाल आदि स्वान गनि
उद्दाम उदर, अरू सर्प, शुभ तेई विधि दोहा वरनि

भानुजी के अनुसार इन 23 दोहा भेदों की लघु-गुरू स्थिति की तालिका निम्नवत है -

	दोहा	गुरु	लघु
१.	भ्रमर	२२	४
२.	भ्रामर	२१	६
३.	शरभ	२०	८
४.	श्येन	१९	१०
५.	मडूक	१८	१२
६.	मर्कट	१७	१४
७.	करभ	१६	१६
८.	नर	१५	१८
९.	हंस	१४	२०
१०.	गयंद (मुदकल)	१३	२२
११.	पयोधर	१२	२४
१२.	बल	११	२६
१३.	वानर	१०	२८
१४.	त्रिकल	९	३०
१५.	कच्छप	८	३२
१६.	मच्छ	७	३४

१७.	शार्दूल	६	३६
१८.	अहिवर	५	३८
१९.	व्याल	४	४०
२०.	विडाल	३	४२
२१.	श्वान	२	४४
२२.	उदर	१	४६
२३.	सर्प	०	४८

इन २३ भेदों के अतिरिक्त भी दोहों के कुछ भेद और भी है। यथा -

चण्डालिनी दोहा उसी दोहे को कहा जाता है जिसका प्रारम्भ जगण (लघु गुरू लघु- ।ऽ।) से होता है। उस दोहे का सृजन कवि के लिए अनिष्टकारक अत: वर्जित किया गया है।

महान बनकर क्या करें, यदि मन नहीं विशाल।
अच्छा है बनकर रहें, जैसे पक्व रसाल।।

वस्तुत: जगण से प्रारम्भ करने पर दोहे की लय में बाधा आती है इसलिए चण्डालिनी दोहा वर्जित किया गया है। अगर जगण दो शब्दों में हो तो वह चल सकता है जैसे-

बड़ा हुआ तो क्या हुआ, जैसे पेड़ खजूर।
पंछी को छाया नहीं, फल लागें अति दूर।।

यहाँ प्रारम्भ में जगण बड़ा हु में है परन्तु दो शब्दों में टूटा हुआ होने से उसकी लय में बाधा नहीं आ रही। 'दोहे के एक भेद दोहरा' का उल्लेख भी आता है जिसके विषम चरणों में १२-१२ और सम चरणों में ११-११ मात्रा होती है। यथा-

सुर समूह विनती करि,
पहुँचे निज-निज धाम।१२+११=२३
जग निवास प्रभु प्रगटे,
अखिल लोक विश्राम।।१२+११=२३

वीरगाथा काल में दोहों का प्रयोग खूब हुआ परन्तु उसका चतुर्मुखी विकास भक्तिकाल और रीतकाल में देखने को मिला। भक्तिकाल में दोहा भक्ति, नीति समाज सुधार, गुरूभक्ति आदि भावों की अभिव्यक्ति के माध्यम बने रहे, निर्गुण पंथी- कबीर, नानक, पीपा, सेन, दादूदयला, मलूकदास, बाबालाल या सुन्दरदास हो या फिर सगुण भक्त- तुलसीदास,. रत्नावली, अग्रदास आदि सबने दोहों को अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया। रहीम, वृन्द आदि नीतिकारों ने भी दोहों का आश्रय लिया। इसी तरह सूफी कवि जायसी, कुतुबन, मंझन आदि ने भी अपने प्रबन्ध काव्यों में चौपाई और दोहों को स्थान दिया। कृष्णभक्त कवियों ने अधिकांशत: कृष्णलीलाओं के माधुर्य का गायन किया जिसके लिए उन्हें ब्रजभाषा की पदशैली अधिक उपयुक्त लगी, हाँ नन्ददास ने 'अनेककार्थ ध्वनि मंजरी', रूप मंजरी, रस मंजरी

तथा भ्रमर गीत में दोहों को अपनाया ही नहीं उन्हें सशक्त अभिव्यक्ति का माध्यम भी बनाया। उदाहरणार्थ अनेकार्थ ध्वनि मंजरी के २ दोहे दृष्टव्य हैं-

(मधु)

मधु वसंत, तरू चैत्र, नभ, तिय, मदिरा, मकरंद।
मधु जल, मधु पय, मधु सुधा, मधुसूदन गोविन्द।।

(पयोधर, भूधर)

मेध, अर्क, कुच, शैल द्रुम, एजु पयोधन आहि।
भूधर गिरि, भूधर नृपहि, भूधर आदि वराह।

रीतिकाल में दोहा मुख्यत: शृंगार की अभिव्यक्ति का माध्यम रहा, गौणत: अध्यात्म, भक्ति और नीति की अभिव्यक्ति भी उसके माध्यम से होती रही। इस काल के रीतिबद्ध कवि हों, रीतिसिद्ध हों या रीतिमुक्त, सबने ही अपनी अभिव्यक्ति के लिए दोहों को सशक्त माध्यम माना। कारण यह था कि दरबारों में तब हिन्दी कवियों की प्रतिस्पर्द्धा उर्दू-फारसी के कवियों से रहती थी, जो दो पंक्ति के गजल के चमत्कारपूर्ण शेर से वाहवाही लूट लेते थे। गजल के उक्ति वैचित्र्य चमत्कारपूर्ण कथन और संक्षिप्तता का मुकाबला केवल दोहा ही कर सकता था। इसलिए अभिव्यक्ति कौशल के लिए दोहा और सरसता और चमत्कार दोनों के लिए इस काल के कवियों ने कवित्त और सवैयों को अपनाया विशुद्ध कवित्व की दृष्टि से देखा जाय तो रीतिकालीन दोहो हिन्दी साहित्य के इतिहास का सर्वोत्तम दोहा दिखाई पड़ता है। बिहारी जैसे दोहाकार इसी युग में हुए जो श्रेष्ठ दोहा का प्रतिमान गढ़-गये। उनके-

तंत्री, नान, कवित्त रत्त, सकम राग रति रंग।
अनबूडे, बूडे तरे तो बूडे सब अंग।।

तथा

दृग उरझत, टूटत कुटुंब,
जुरत चतुर चित प्रीति।।
परति गाँठ दुरजन हिए,
दई नई यह रीति।।

जैसे मर्मस्पर्शी व अभिव्यक्ति-कौशल सम्पन्न दोहे आज भी काव्य-रसिकों के हृदय को रसमग्न करने की क्षमता रखते हैं।

आधुनिक युग में भारतेन्दु युग में तो दोहा अपनी दमदार उपस्थिति साहित्य में दर्ज कराता रहा। भाररतेन्दु जी ने अपनी भाषा के प्रति प्रेम की अभिव्यक्ति-

निज भाषा उन्नति कहै, सब उन्नति को मूल।
पै निज भाषा ज्ञान के बिन मिटै न हिय को शूल।।

जैसा दोहा लिखकर ही अपनी हिन्दी भाषा के प्रति प्रेम और सम्मान जगाया। भारतेन्दु मण्डल के अन्य कवियों ने भी न्यूनाधिक मात्रा में दोहे लिखे। द्विवेदी युग में अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध', रामचरित उपाध्याय आदि ने दोहे लिखे परन्तु छायावाद युग में दो दोहाकार विशेष प्रसिद्ध रहे- १. सुधा-सम्पादक दुलारेलाल भार्गव तथा २. हरिप्रसाद द्विवेदी उपाख्य 'वियोगी हरि' भार्गव जी गंगा पुस्तक माला के संस्थापक स्वामी थे उन्होंने ५०० से कुछ अधिक

दोहे, दुलारे दोहावली में लिखे, उनके दोहे सरस ब्रजभाषा में रचित हैं। भाषा में सामासिकता व चमत्कारिकता पर्याप्त है। वियेगी हरि जी ने 'वीर सतसई' दोहों की विषयवस्तु को नया आयाम दिया। उनके दोहों में भारत माता के वीर सपूतों का गौरव-गान है। वे कहते हैं-

सीस हथेरी पर धरें, ठोंकत भुज मजबूत।
छिति-छत्रानी गर्भ तें, जनमत सूर सपूत।।

इसी तरह शाहजहाँ के दरबार में अवकाश की अवधि समाप्त होने बाद ७ दिन देर से पहुँचने पर उसके एक सामन्त सलावत खाँ ने अमर सिंह राठौर को गँवार कहा। वीर अमर सिंह ने वहीं दरबार में उसका सिर तलवार से काट दिया था। इस घटना को एक दोहे में चित्रित करते हुए वियोगी हरि जी ने लिखा-

'इत गँ' कार मुखते, कढ़ी, उत निकसी जमधार।
'वार' कहन पायौ नहीं, कीन्हों जमघर पार।।

वियोगी हरि जी की वीर सतसई के उपरान्त दोहा हिन्दी कविता के केन्द्र से लगभग लुप्त हो गया। यों यदा-कदा बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' अम्बिका प्रसाद वर्मा 'दिव्य' या रामेश्वर शुक्ल 'अंचल' जैसे कवि कुछ दोहे लिखते रहे परन्तु दोहों को अभिव्यक्ति का सशक्त नहीं बनाया गया। छायावाद काल से लेकर आठवें दशक तक कोई उल्लेखनीय दोहा संग्रह सामने नहीं आया परन्तु जब अपातकाल में लिखी दुष्यन्त कुमार त्यागी की गजलें लोकप्रिय हुईं और हिन्दी में गजल की लोकप्रियता बढ़ी, तब कुछ रचनाकारों का ध्यान दोहों की ओर गया, दिनेश शुक्ल जैसे रचनाकार इस क्षेत्र में उतरे और देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र' जैसे मनस्वी युगचेता रचनाधर्मी ने 'नव दोहा' का आन्दोलन चलाकर दोहा को अभिव्यक्ति के क्षेत्र में 'नवगीत' और 'गजल' के समकक्ष खड़ा करने का प्रयास किया और १९८५ में आत्माराम एण्ड सन्स से 'नीराजना' नाम से श्री रत्नाकार शास्त्री का एक उत्तम दोहा संग्रह सामने आया। इसकी भाषा ब्रज व खड़ी बोली मिश्रित है परन्तु १९९० के बाद लिखे दोहे अधिकांशत: विशुद्ध खड़ी बोली के ही है। बीसवीं सदी के अन्तिम दशक में ही 'इन्द्र' जी द्वारा सम्पादित नव दोहा की श्रृंखला के ६ संग्रह प्रकाशित हुए जिनमें से प्रत्येक में ७ दोहाकारों के सपरिचय १००-१०० दोहे प्रकाशित किए गए।

बीसवीं सदी में दोहा ने ऊँची उड़ान भरी थी। अनेक दोहाकारों के एकल दोहा संकलन प्रकाशित हुए, साथ ही डा. अशोक अंजुम ने १९९९ और २००० ई. में दोहा दशक के दो खण्ड प्रकाशित किए जिनमें १०-१० दोहाकारों के १०१-१०१ दोहे रखे गये। सभी दोहे आधुनिक जीवन के यथार्थ को उक्तिवैचित्र्यमयी शैली में प्रस्तुत करने वाले हैं। दोहे की मूल शैल्पिक चेतना को सुरक्षित रखते हुए इन दोहों में जीवन की साँसे महसूस की जा सकती हैं यथा-

खून सनी पथ पर पड़ी, थी कुत्ते की लाश।
राजनीति करने लगी, उसमें वोट तलाश।।

- चन्द्रपाल शर्मा 'शीलेश'

मजहब ने जब बाँग दी, बौराया इन्सान।
राम खुदा घायल हुए, है कबीर हैरान।।

-डा. अशोक अंजुम

इससे पूर्व १९८७ में हिन्दी प्रचारक संस्थान वाराणसी ने वरजोर सिंह 'सरल' (साहित्य रत्न) के सम्पादकत्व में हिन्दी-दोहा-सार नामक २८० पृष्ठीय पुस्तक प्रकाशित की थी। इसमें मध्यकाल के ११ और आधुनिक काल के १४ दोहाकारों के दोहे संग्रहीत हैं।

इक्कीसवीं सदी में डा. महेशदिवाकर और डा. कृष्ण स्वरूप शर्मा मैथिलेन्द्र के संयुक्त सम्पादन में दोहा सन्दर्भ-०१ (२००७) तथा दोहा-सन्दर्भ-०२ (२०११) प्रकाशित हुए। दोनों में विद्वानों के वैदुष्यपूर्ण आलेखों के साथ क्रमशः ९१ तथा ६५ दोहाकारों का परिचय प्रकाशित हुआ है। अभी २०१५ में हरेराम समीप द्वारा 'समकालीन दोहाकोश' प्रकाशित कराया गया है जिसमें डा. अशोक अंजुम की भूमिका के साथ २७५ दोहाकारों के १५-१५ दोहे संकलित किये गये हैं।

इस समवेत और सामूहिक दोहा-संग्रहों का परिचय देने का उद्देश्य केवल यह है कि दोहा अब आज के युग का विशेष लोकप्रिय छन्द बन गया है। समकालीन जीवन की विसंगतियाँ, मूल्य-विघटन, कुत्सित यथार्थ, राजनीतिक जीवन की विसंगतियाँ, मानव में पनपती स्वार्थपरता, टूटते परिवार, ऋतुओं का स्वरूप, पौराणिक व मिथकीय चरित्रों की आधुनिक प्रस्तुति, पर्यावरण-प्रदूषण, आधूनिकतम विमर्श (नारी, वनवासी, दलित और किन्नर) जैसे लगभग सभी विषय दोहों को कथ्य बन रहे हैं। भाषा में नुकीलापन और 'कहन' में उक्ति वैचित्र्य बढ़ रहा है। विस्तार भय से केवल कुछ उदाहरण देकर आलेख का समाहार किया जाता है-

चेहरे पर चेहरे कई, उस पर पर्दे सात।
नेताजी ने मुकुर को, बतला दी औकात।।

-डा. रामसनेही लाल शर्मा 'यायावर'

झाग उगलते अश्व हम, चाबुक सहता चाम।
जबड़े में भींचे हुए, काँटेदार लगाम।।

-देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र'

सिंहासन पर जो चढे, जय जनता की बोल।
जनता उनकी कार का, अब केवल पैट्रोल।।

- जय चक्रवर्ती

हम दीवानों से हुई, बार-बार ये भूल।
अँजुरी में शोले भरे, छोड़ जुही के फूल।।

-डा. शिवओम 'अम्बर'

इन दोहों पर अवलोकन यह प्रमाणित करने के लिए पर्याप्त है कि दोहों का भविष्य निश्चित रूप से स्वर्णिम है।

- 86, तिलक नगर, वाईपास रोड, फीरोजाबाद - 283203 (उ.प्र.)।
मो. 094123-16779

PEER REVIEWED JOURNAL
ISSN 0505-7523

श्रीमद्भगवद्गीता में विश्वबन्धुत्व की भावना

- उमा रानी

महाभारतरूपी रत्नमय महामाला का प्रधान देदीप्यमान रत्न, अनेक जन्मों से संसार-सागर में निमज्जन करने वाले कलियुग के प्राणियों के उद्धारार्थ महानौका श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान् श्रीकृष्ण ने मानव को जीवन दर्शन प्रदानार्थ अर्जुन के माध्यम से अलौकिक, अद्वितीय, अमर और रहस्यमय मधुर ज्ञान-संगीत का गायन किया है जो आज भौतिक जीवन से थके हुए, हतोत्साह एवं निराश हुए मानव को आशा एवं आश्वासन प्रदान करके उसके भीतर शक्ति, शौर्य, साहस, शान्ति एवं चैतन्यता जागृत करता है। गीता युग-युग का ऐसा जीवन ग्रन्थ है जिसमें दर्शन की सुन्दरता, धर्मशास्त्र की शोभा, नीतिशास्त्र की आभा, काव्य की कमनीयता और उपनिषदों की छवि झलकती है इसलिए कहा गया है-

गीता सुगीता कर्त्तव्या किमन्यैः शास्त्रविस्तरैः।

यहाँ मानव जैसा पथ-प्रदर्शन चाहता है उसे वैसा ही मार्गदर्शन वह करवाती है। वर्तमान में दुःखरूपी दावानल से दग्ध विश्व को शीतलता प्रदान करता है। आत्मिक शान्ति एवं सन्तुलन प्राप्त्यर्थ मानव के लिए निर्दिष्ट श्रेष्ठाचरण का निर्देश करते हुए गीता में कहा गया है कि- मनुष्य किसी से द्वेष न करे, सभी जीवों के प्रति मित्रभाव व विश्वबन्धुत्व की भावना रखे, अहंकार का परित्याग करे, सुख दुःख में समभाव रखे, क्षमाशील, आत्मसुन्तुष्ट एवं आत्म संयमी बनकर मन एवं बुद्धि को ईश्वर-भक्ति में लीन रहे।[1] गीता के सोलहवें अध्याय में भगवान् श्रीकृष्ण के द्वारा निर्भयता, आत्मशुद्धि, दान, आत्मसंयम, यज्ञ परायणता, तपस्या, सरलता, अहिंसा, सत्य, क्रोधविहीनता, त्याग, शक्ति, समस्त जीवों पर करुणा, लोभविहीनता, भद्रता, लज्जा, संकल्प, तेज, क्षमा, धैर्य, पवित्रता, ईर्ष्या एवं सम्मान की इच्छा से मुक्ति इन दिव्य गुणों के धारणार्थ उल्लेख किया गया है।[2] ताकि इन गुणों से सम्पन्न होकर मानव मुक्तिमार्ग पर अग्रसर होता हुआ शान्ति प्राप्त करे। उसके भीतर मित्रभाव (सद्भाव) व विश्वबन्धुत्व की भावना जागृत हो। इस प्रकार गीता मूर्च्छिप्रायः नियमसंयमादि उदात्तगुणों को उद्घटित कर मानव के अन्दर उन्हें पुनर्जीवित करती है।[3] आज मनुष्य सैंकड़ों आशापाशों में निबद्ध, काम, क्रोध परायण व धनसञ्चय की कामना से व्यग्र है[4] एवं चिन्ताओं के चक्रव्यूह में चक्कर काटते मानव को निष्काम कर्मयोग का उपदेश देकर शान्ति प्रदायिका[5] गीता में वर्तमान समय की समस्त समस्याओं का समाधान

उपलब्ध है सभी (आध्यात्मिक, आधिदैविक एवं आधिभौतिक) दु:खों का मूलकारण हमारे द्वारा प्रतिपादित कर्म होने के कारण दु:ख निवारणार्थ कथन है-

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफल हेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि।।[६]

अत: कर्त्तव्य का अभिमान न करते हुए पूर्ण मनोयोग से कर्म करना चाहिए।[७] निष्काम कर्म पूर्णता हेतु गीता में तीन साधन बताए गए हैं- १. योगस्थ कुरू कर्माणि २. संङ्गत्यक्त्वा ३. सिद्धयसिद्धयों: समो भूत्वा।[८]

आज मनुष्य का जीवन, जीवन ही नहीं मालूम पड़ता है क्योंकि जहाँ शान्ति, सौहार्द, समर्पण और आनन्द न हो वहाँ जीवन क्या होगा। गीता के निष्काम कर्म के उपदेश को स्वजीवन में अपनाकर मानव भगवान् के स्वरूपभूत आनन्द का अनुभव करने लगता है तथा भक्तिरस के प्रवाह में अनात्मभाव, वैमनस्य एवं स्वार्थन्धता आदि वृत्तियाँ तथा विषमताएँ सदैव विलीन हो जाने पर **मामेकं शरणं व्रज**[९] का सिद्धान्त सिद्ध होकर शुभगुण प्रकट होने लगते हैं। आज मानव द्वारा आग्रेय विचारों से ऊर्जा ग्रहण किए जाने के कारण समस्त विश्व आतंकवाद से ग्रस्त तथा सन्त्रस्त है। लोगों का पारस्परिक सद्भाव एवं सौहार्द मिटता जा रहा है। गीता आपसी सौर्हादादि सद्गुणों की ओर तो मनुष्य को लगाती है परन्तु वह उसे ब्रह्मनिष्ठ भी बना देती है। आवरण दोषरूप अज्ञान तिमिर को ज्ञानयोग से नष्ट करके जीवनपथ को आलोकित करती है। यह ज्ञान ही आत्म साक्षात्कार का कारण बनता है।[१०] यह तभी सम्भव है जब मानव मन से अज्ञान रूपी अन्धकार समाप्त हो और वह सब प्राणियों में अपनी आत्मा को तथा अपनी आत्मा में सभी प्राणियों को देखता हुआ ब्रह्मभाव को प्राप्त हो जाता है तब वह जीवन की समूची धारा के साथ एक हो जाता है।[११] इस प्रकार गीता समस्त मानवता को संकल्प, सद्भाव और शान्ति प्रदान करके आशान्वित करती है। स्थितप्रज्ञ गीता का व्यक्तिगत आदर्श है। स्थिरप्रज्ञता प्राप्त कर्मयोगी व्यक्तियों से एक दैवीय सम्पदा युक्त शान्त एवं सद्भावी समाज का निर्माण करना गीता का चरम लक्ष्य है। इसमें श्रीकृष्ण ने प्राणिमात्र की तात्विक एवं आध्यात्मिक एकता का रहस्योद्घाटन करके वैश्विक शान्ति, एकता व विश्वबन्धुत्व का मार्ग प्रशस्त किया है। इस तत्त्वज्ञान का बोध हो जाने पर व्यक्ति सर्वत्र चराचर में समत्व एवं एकत्व की अनुभूति करके निष्काम, नि:स्वार्थ व निस्पृहभाव से अपने दैहिक व लौकिक कर्त्तव्यों का निर्वहन करने में सफल होता है। गीता के अनुसार-

विद्याविनयसम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि।
शुनि चैव श्वपाके च पण्डिता: समदर्शिन:।।[१२]

अर्थात् पण्डितजन विद्या और विनययुक्त ब्राह्मण में तथा गौ, हाथी, कुत्ते और चाण्डाल में समदर्शी होते हैं। इस प्रकार की समदर्शिता द्वारा

ही वैश्विक एकता एवं विश्वबन्धुत्व की भावना सम्भव है। भगवान्‌गीता प्राणिमात्र के कल्याण का चिन्तन करती है। श्रीकृष्ण का वचन है- **निर्वैरः सर्वभूतेषु यः स मामेति पाण्डव:।।**[१३]

उपर्युक्त वर्णन से सिद्ध होता है कि गीता का उपदेश किसी सीमा से परे है। व्यक्ति, समाज और विश्व में अशान्ति, हिंसा व संघर्ष पैदा करने वाले अज्ञान जनित अवगुणों को गीता में आसुरी सम्पदा कहा गया है। इस सम्पदा का विनाश करके "दैवीय सम्पदा" युक्त व्यक्तियों के समाज का निर्माण गीता-ज्ञान का ध्येय है। इस प्रकार शान्ति, एकता, समृद्धि, विश्वबन्धुत्व की भावना, सद्‌भाव एवं सौहार्दादि गुणों का आदि स्रोत गीता वस्तुत: समस्त मानवता का संगीत है। विश्व के वर्तमान संकट, वैचारिक व्यामोह और हमारी भ्रान्तियों में गीता का उपदेश अमोघ औषधि है। निष्काम कर्म का अर्थ लोककल्याण की भावना से नि:स्वार्थ कर्म करना है। इस आदर्शों से ही वैश्विक एकता, सद्‌भाव एवं विश्वबन्धुत्व की भावनादि का मार्ग प्रशस्त होता है अर्थात् इन आदर्शों से भरपूर गीता में वैश्विक एकता, सद्‌भाव और विश्वबन्धुत्व की भावना स्पष्टत: झलकती है। वर्तमान समय में विश्व की तनावपूर्ण स्थिति में कर्म, भक्ति व ज्ञान की त्रिवेणी अर्थात् समन्वयात्मक ज्ञान की पवित्र गंगा श्रीमद्‌भगवद्‌गीता के उद्‌गार अर्थात् ऊर्मियाँ (उदारभाव से धर्मपालन, निष्कामभाव से कर्म, समस्त सृष्टि से सदाचार जगत् को आत्मवत् समझना, प्रभु में अनन्य शरणागति, समदृष्टि और आत्मबुद्धि से सर्वहित साधन) ही द्वन्द्व-ग्रस्त मानवार्थ निर्द्वन्द्व जीवन का पथ-प्रशस्त कर सकते हैं। गीता भगवान् का हृदय है- गीता में हृदय पार्थ। यहाँ सब को शरण मिलती है। अत: विषाद के क्षणों में मानव गीता की शरण ले कसता है। गीता से मानव में परस्पर प्रेम, समर्पण, सद्‌भाव, वैश्विक एकता, मानव व समाज-सेवा तथा विश्वबन्धुत्व की भावना जागृत होने लगती है और परिवार, समाज व विश्वकल्याण की सम्भावना प्रबल होने लगती है।

- एसोसिएट प्रोफेसर संस्कृत, सन्त ढाँगू वाले गुज्जर राजकीय महाविद्यालय, बीटन, ऊना (हि.प्र.)। मो. 8595147528

---

१. श्रीमद्‌भागवद्‌गीता, १२.१३-१४
२. वही, १६.१-३
३. वही, १६.१७
४. वही, १६.१२
५. वही, १६.१३
६. वही, २.४७
७. वही, १८.१४-१६
८. वही, २.४८
९. वही, १८.६६
१०. वही, ६.२९
११. वही, ६.३०
१२. वही, ११.५५
१३. वही, ५.१८

PEER REVIEWED JOURNAL
ISSN 0505-7523

वैचारिक प्रदूषण-कारण व निवारण

- ज्योति गोगिया

सही कहा गया है कि ''विचार हमारे भाग्य निर्माता है''। अक्षरशः यह कथन सत्य है, क्योंकि जैसे हमारे विचार होंगे, वैसे हमारे कार्य होंगे, जैसे हमारे कार्य होंगे, वैसी हमारी आदतें होंगी, जैसी हमारी आदतें होंगी, वैसा हमारा चरित्र होगा और जैसा हमारा चरित्र होगा वैसा हमारा भाग्य होगा। तो, निश्चय ही विचार जीवन-निर्माण का बहुत प्रभावशाली तत्त्व है। न केवल व्यक्ति बल्कि समाज, देश, विश्व के निर्माता विचार ही होते हैं। कहते है न, एक व्यक्ति, एक पुस्तक, एक कलम समाज की दिशा बदल सकते हैं। कैसे? अपने विचारों के बल पद। रामधारी सिंह दिनकर ने कलम और तलवार में से कलम को शक्तिशाली बताते हुए लिखा है-

कलम देश की बड़ी शक्ति है, भाव जगाने वाली।
दिल ही नहीं दिमागों में भी आग लगाने वाली।।
पैदा करती कलम विचारों के जलते अंगारे।
और प्रज्ज्वलित प्राण देश क्या कभी भरेगा सारे।।

मनुष्य के हर विचार का एक निश्चित मूल्य तथा प्रभाव होता है। यह बात विज्ञान के नियमों की तरहं प्रामाणिक है। मनुष्य का समस्त जीवन उसके विचारों के साँचे में ही ढलता है। शरीर-रचना के संबंध में जाँच करने वाले एक प्रसिद्ध वैज्ञानिक ने आपनी प्रयोगशाला में तरह-तरह के परीक्षण करके यह निष्कर्ष निकाला कि मनुष्य का समस्त शरीर अर्थात् हड्डियाँ, माँस, स्नायु आदि मनुष्य की मनोदशा के अनुसार एक वर्ष में बिल्कुल परिवर्तित हो जाते हैं और कोई-कोई भाग तो एक-दो सप्ताह में ही बदल जाते हैं। जीवनी-शक्ति जो आरोग्य का यथार्थ आधार है, मनोदशाओं के अनुसार घटती-बढ़ती रहती है। विचारों का प्रभाव समाज के स्वास्थ्य पर कितना पड़ता है। यह भी स्वयंसिद्ध है। सकारात्मक विचार संस्तुति का प्रतीक है तो नकारात्मक विचार नैतिक पतन का। वैचारिक प्रदूषण समाज को पतन की ओर लेकर जाता है। वैचारिक प्रदूषण युक्त समाज नकारात्मक सोच का धारक हो जाता है। जैसे-

कोई कमल की कली देखता है कीचड़ मे
किसी को चाँद में भी दाग़ नजर आता है।

दु:खद पहलू तो यह है कि नकारात्मक सोच से दृष्टिकोण ही नकारात्मक नहीं होता बल्कि कार्य भी निम्न कोटि के हो जाते हैं। उत्साह भी कुण्ठत हो जाते हैं व प्रगति के द्वार बंद हो जाते हैं। आज समाज के कोने-कोने में जिधर भी देखो, उधर

नैतिक पतन का बोलबाला है। नैतिक सामाजिक-राजनीतिक पतन का कारण तो वैचारिक प्रदूषण ही है। समाज का हर वर्ग इस भंयकर रोग से ग्रस्त है। अधिकारी रिश्वत लेते नहीं थकते तो विद्यार्थी उत्साह व उमंग के साथ विद्रोह के गीत गाते है। व्यापरी और उद्योगपति काले धन के संग्रह में लीन हैं तो नेता गुमराह करने की कला में प्रवीण हैं। एक ओर मां अपनी ममता का गला घोंट रही है तो वहीं दूसरी ओर, भाई भाई के रक्त से हाथ रंग रहा है। आखिर क्या कारण है कि धरती की जिस पवित्रता पर रीझकर कहते हैं कि देवता भी मानव-जीवन के लिए तरसते हैं, वहां आज राक्षसी-संस्कृति पनप रही है। उत्तर यही है कि मनुष्य जब भी अपने नैतिक आचरण से विमुख होता है, जब वह अपने मन-मस्तिष्क की सात्विकता को दबा कर तामसिक प्रवृत्तियों को प्रोत्साहित करता है तब-तब विनाश अपना नंगा नाच करता है, पाश्विकता खुला खेल खेलती है और दानवता दमनीय दृढ़ता दिखलाती है। नैतिक पतन का कारण है सद्‌विचारों का पतन, सद्‌वृत्तियों का पतन, सद्‌भावनाओं का पतन और पतन का कारण भी है और फल भी है वैचारिक प्रदूषण। हमने अभी तक वातावरण के प्रदूषण की बात की व उसकी गंभीरता को समझा। परंतु इस पर विचार-विर्मश नहीं किया कि वैचारिक प्रदूषण कितना भयंकर होता है। आज हम भारतीय समाज में इसके दुष्परिणाम देख रहे हैं। वैचारिक प्रदूषण का एक महत्त्वपूर्ण कारण है भारतीय संस्कृति की विलुप्त होती दिशाएँ। संस्कृति कोई देवता नहीं जो मंदिरों में मिलेगी। यह तो एहसास है जो अस्तित्व के साथ जुड़ी हुई है। संस्कृति एक ऐसा विस्तृत फलक है, जिसमें आदमी और भगवान् दोनों शरण पाते हैं। दुर्भाग्य से आज हमारी संस्कृति का स्वरूप विकृत हो गया है। सांस्कृतिक स्तर पर हमारी स्थिति धोबी के कुत्ते से भिन्न नहीं, न घर के रह गए हैं और न ही घाट के, न प्राचीन संस्कृति बची है और न आधुनिकता पूरी तरह से आई है। आज हम न पूर्व के हैं और न पश्चिम के। आज न ही प्राचीन भारतीय संस्कृति की सात्विकता है और न ही पश्चिम के ज्ञान-विज्ञान की आभा। आज का समाज पश्चिम के भौतिकतावाद, उपयोगितावाद, उपभोगवाद को अपना कर उसकी दिखावटी चकाचौंध में भटक कर रह गया है। शाब्दिक साक्षरता के साथ सांस्कृतिक साक्षरता की ओर ध्यान नहीं दिया गया। न अपनी संस्कृति शुद्ध रही और न अपनी भाषा। विदेशी भाषा के मोहपाश में बंधे हम अपनी भाषाओं से दूर हो रहे हैं। भाषा विचारों की संवाहिका होती है। विचारों का प्रदूषण भाषा के प्रदूषण का भी बहुत बड़ा कारण व कारक है। जिसे अपनी भाषा से प्यार नहीं, उसके अंतर्मन के भाव विचार अपनी सच्ची व सही अभिव्यक्ति के लिए तरसते ही रह जाएंगे। वैचारिक प्रदूषण का कारण राजनीतिक प्रदूषण भी

है। स्वार्थलिप्सा ने राजनीति के नैतिक रूप को धूल धूसरित कर दिया है। अपने धर्म, जाति, भाषा, प्रदेश की लिप्साओं में पड़ी स्वार्थी पार्टियां वैचारिक प्रदूषण फैला कर अपने स्वार्थ साधती है जिसका प्रभाव समाज व राष्ट्र पर सीधे तौर पर पड़ता है। जैसे कि कवि अशोक चक्रधर ने अपनी कविता **लगता है जंगल में चुनाव आने वाला है**- में कुटिल नेताओं के झूठे नारों व उसके पीछे छिपे खूंखार इरादों को यूं बयां किया है-

'मधुमक्खियों से कहा गया कि भालुओं से प्रोटैक्शन होगी, भालुओं से कहा गया कि मधुमक्खियों के छत्तों पर उनका रिजर्वेशन होगा।'

आज हमारा समाज वैचारिक प्रदूषण से इस तरह ग्रस्त व त्रस्त है कि वह अपनी मूल गरिमा व महिमा को भूल गया है। उसकी स्थिति तो उस सिंह की तरह हो गई है जो स्वयं को गधा समझ कर गर्दभ सिंह बन लाठियां खा रहा है। किसी जंगल में किसान मजदूरों से जंगल कटवा रहा था तो संध्या को बोला, जल्दी चलो, मुझे शेर से उतना डर नहीं लगता, जितना संध्या से लगता है। शेर यह सुन रहा था, बोला अच्छा इतना भयंकर जीव है संध्या। इतने में धोबी अपने गधे को ढूंढता वहां पहुँचा और अंधेरे में झाड़ी में डर कर बैठे शेर को गधा समझ कर दो लट्ठ लगाए और गधा समझ कर बांध लिया। गदर्भ सिंह भी मार खाने के भय से आगे-आगे चलता रहा। तभी दूर से दूसरे शेर ने कहा, भाई तुम गधा कब और कैसे बन गए? गर्दभ सिंह ने कहा, धीरे बोले। मेरे पीछे, मेरा कोतवाल साहब आ रहा है, भागो, नहीं तो तुम्हें भी पकड़ लेगा, इसका नाम संध्या है। स्वाधीन शेर ने चिल्ला कर कहा कि मूर्ख संध्या नाम का कोई जीव नहीं, संध्या तो अंधेरे को कहते हैं। ठीक यही हालत हमारी हो रही है। स्वार्थ से लिप्त व्यक्तियों, समाजों, देशों ने हमें गधा बना दिया है। अपने मूल रूप को भूल कर गर्दभ सिंह बनें हम अपमान, अवमानना, निराशा का दंश झेल रहे हैं। जागरूकता, सजगता, चेतनता ही हमें वैचारिक प्रदूषण से बचा सकती है। अगर हम इस जागरूकता से युक्त न होंगे तो गर्दभ सिंह बने अंधेर नगरी में सब झेलेंगे। तो हमारा हाल वही होगा जिसे भारतेन्दु हरीशचन्द्र ने अपने नाटक अंधेरनगरी में लिखा है-

जहां न धर्म न बुद्धि नीति न सुजन समाज।
ते एसहि आपुहि नसै, जैसे चौपट राज।।

- अध्यक्ष, स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग,
हंसराज महिला महाविद्यालय, जालन्धर। मो. 97811-11877

ISSN 0505-7523

विश्वज्योति वर्ष: ७२, सं. ११
फरवरी ,२०२४

अथ पार्थ उवाच

- कमलप्रसाद चौरसिया

पार्थ ने कभी कुछ नहीं कहा। धृतराष्ट्र उवाच से लेकर संजय उवाच तक सुनता ही रहा। किसी को नहीं मालूम कि वह अर्जुन की मनोदशा का बारीकी से अध्ययन कर रहा है। दूसरी ओर श्रीकृष्ण उस पर दृष्टि गढ़ाये हुए हैं। भीष्म शैया पर विराज रहे हैं। अब कर्ण नामधारी पार्थ के रणकौशल प्रदर्शन की बारी है। संजय की दृष्टि धृतराष्ट्र के मनोभावों के अनुरूप अंग-प्रत्यंग के नाटकीय प्रभाव देखने में लग्न है। धृतराष्ट्र की जिज्ञासा चरम पर है। वह रह-रहकर पूछता है-

धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे समवेता युयुत्सवः।
मामकाः पाण्डवाश्चैव किमकुर्वत संजय।।

मैं क्या कह रहा हूँ। बताओ, क्या हो रहा है?

संजय कहता है- कुछ समझ में नहीं आ रहा है महाराज। उनकी दृष्टि किस पर रह-रहकर ठहर जाती है। अर्जुन की तरफ तो उनका ध्यान कम ही है। वे एक कुशल अध्यापक की तरह सब पर दृष्टि डाल रहे हैं किन्तु न जाने क्यों जब अर्जुन की ओर दृष्टि डालने के लिए उनके परस्पर्श करता है, तभी वे उसकी ओर देखते हैं; और अपनी समझाइश देकर दूसरी ओर, न जाने किसकी ओर दृष्टि केन्द्रित करते हैं। लगता है, जैसे यह वीर उनकी तीक्ष्ण दृष्टि में है। उसके भावों को पढ़ने का ऐसा प्रयत्न योगिराज क्यों कर रहे हैं, जैसे वह युग को बदलने में एकमेव सक्षम वीर हो। धृतराष्ट्र कहते हैं- संजय, कृष्ण की दृष्टि के फेर में मत पड़ो। उस छलिया की दृष्टि में बड़ा रहस्य समाया होता है। तुम तो जो हो रहा है, उस पर दृष्टि केन्द्रित करो। परमगुरु कब, क्या इशारा कर बैठें और कुछ अघटित घटित हो जाए, कोई नहीं जानता।

श्रीकृष्ण का वक्तव्य अनवरत है। अर्जुन की ओर जब-तब दृष्टि डालते हैं। आश्वस्त होने की कोशिश करते हैं कि वह एकाग्रचित्त है किन्तु दूसरी ओर जब दृष्टि डालते हैं तब उनके अधरों पर विचित्र हँसी उभर जाती है। लगता है कि जिस पर उनकी अर्जुन से अधिक दृष्टि केन्द्रित है, वह उससे भी अधिक उनका प्रिय है। वह उनके वक्तव्य के तात्पर्य को रहस्यमयी ढंग से हृदयंगम कर रहा है। श्रीकृष्ण उसके अंग-स्फुरण से उसके मन पर होते प्रभावों का आकलन करते जाते हैं। अरे हाँ, समझ में आया महाराज। वह वीर पार्थ है। अतएव वे अर्जुन की तो जिज्ञासायें शान्ति करने में जुटे रहते हैं किन्तु उनका ध्यान पार्थ पर ही रहता है। पार्थ की दृष्टि कृष्ण-गुरुजी की पाठ पढ़ाने के समय होने वाले अंग-अंग के उल्लास और प्रोत्साहित करती मुस्कान पर है। वह मोहित है। कुछ पूछने अथवा कहने की उसमें कोई उत्सुकता नहीं। जिज्ञासा जागती है तो अंग पर

उभरते आये स्फुरण को इस तरह छिपाने की कोशिश करता है जैसे कोई खेल खेलने में मगन हो। कृष्ण पुलकित हैं यह देखकर कि पार्थ खेल-खेल में जो कुछ कहा जा रहा है, उसे अपना बना रहा है; आत्मगुरु बनने की चेष्टा कर रहा है। हो सकता है, उसे भी कभी किसी को कुछ ऐसा ही संदेश देने के लिए तर्कसंमत कुछ कहने का अवसर मिले। श्रीकृष्ण अर्जुन के प्रश्न के समय या जब वे समझते हैं कि कुछ विशेष कहना छूट रहा है तो उसकी पूर्ति के लिए ऐसी गहरी साँस लेते हैं जैसे सब कुछ पचा लिया गया हो।

श्रीमद्‌भगवद्‌गीता के अट्‌ठारवें अध्याय में श्रीकृष्ण पार्थ को अब तक 'श्रोतव्यश्च श्रुतस्य च' को समीकृत करते हुए कहते हैं- **'यज्ञदानतपः कर्म न त्याज्यं कार्यमेव तत् यज्ञो दानं तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम्। एतान्यपि तु कर्मणि सङ्गं त्यक्त्वा फलानि च। कर्तव्यानीति में पार्थ निश्चितं मतमुत्तमम्।।** तब ऐसा लगता है कि वे पार्थ के रूप में बसे कर्ण को ही संबोधित कर रहे हैं। वे सर्वज्ञ तो हैं ही। जानते हैं कि कर्ण खुद को पार्थत्त्व से विलग नहीं कर पाया है। बचपन को कौन बिसरा सकता है। वह समय-समय मनोरंजन करवाता ही रहता है। बचपन प्रौढ़ के गांभीर्य को हरकर उसके मन के तनाव को हल्का कर देता है। गीता आरम्भ करते ही वे सबसे पहले पार्थ को ही संबोधित करते हैं, **'भीष्मद्रोण-प्रमुखतः सर्वेषां च महीक्षिताम्। उवाच पार्थ पश्यैतान् समवेतान् कुरूनिति। तत्रापश्चत्स्थितान् पार्थः पितृनथ पितामहान्। आचार्यान्मातुलान् भ्रातृन् पुत्रांन्पौत्रान् सरवींस्तथा।।** इन सबको देखकर वह कोई प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं करता किन्तु 'श्वशुरान् सुहृदश्चैव सेनयोरुभयोरपि। तान् समीक्ष्य च कौन्तेयः सर्वान् बन्धुनवस्थितान् ।। कृपया परयाविष्टो विषीदन्निदमब्रवीत्।। दृष्वेदं कृष्ण युयुत्सुं समुपस्थितम्।। कौन्तेय विचलित हो जाता है। कौन्तेय पार्थ के बालपने से अवगत नहीं है। वह पार्थ से प्रेम नहीं कर पाता अपितु उसमें उसके प्रति वैरभाव और तीक्ष्ण हो जाता है। श्रीकृष्ण पार्थ से प्रेम करते हैं। हर श्लोक पर उसका बचपना अभिनव अभिनय करता है। वे उसे देखने के लिए लालायित रहते हैं; किन्तु चिन्तित भी रहते है कि कहीं वह खेल-खेल में कोई उच्छृंखल खटपट न कर बैठे।

परमगुरु **'त्रैगुण्य विषया वेदा निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन। निर्द्वन्द्वो नित्यसत्त्वस्थो निर्योगक्षेम आत्मवान्।।** के अनुसार जिस नर का निर्माण करना चाहते हैं, वह कर्ण के रूप में उपस्थित था, वह पार्थ के मन को बारीकी से पढ़ रहे हैं। स्वयं को आश्वस्त कर रहे थे कि उन्होंने उसे नर बना लिया है। तथापि उनका मन कहता है कि ऐसे बालक अपने स्वजनों से परिचित हो जाने पर समझदार हो जाते हैं। मेरी मुर्गी की एक टाँग सोच को सदा के लिए गया-स्नान करा देते हैं। वह भीष्म, द्रोण, परशुराम आदि से ज्ञान प्राप्त कर इतना समझदार हो गया है कि स्वयं कृष्ण हो गया है, और अर्जुन के मानुषी मन को दैवी सम्पदा से भरने के यत्न का मंत्रमुग्ध होकर आनन्द ले रहा है। वह

उद्विग्न नहीं है, सरल, सहज सौम्य है। यही कारण है कि अपने संबंधियों का दर्शन कराये जाने पर भी कृष्ण के वक्तव्य से सर्वथा अप्रभावित रहता है। अर्जुन की भाँति वह उनके विछाये विषाद के फन्दे में नहीं फँस रहा है। यह देख कृष्ण पुलकित होते हैं। धन्य-धन्य कहने का उनका मन होता है किन्तु वे तटस्थ हैं, इसलिए कोई प्रतिक्रिया प्रकट नहीं होने देते। द्रोणाचार्य के सान्निध्य में राजकुमारों के साथ विद्योपार्जन करते, और प्रत्यंचा खींचते कर्ण को युधिष्ठिर ने उसे कवच-कुण्डलों से युक्त देख लिय था। समझ गये थे कि वह अवध्य है। वे चिन्तित थे कि गुरुदेव का अर्जुन को सर्वश्रेष्ठ धनुर्धर होने का दिया वर कहीं अन्यथा न हो जाए।

पार्थ पृथा का पुत्र है और कुँवारी कुन्ती पृथा है; और परिणीत पृथा कुन्ती है। पार्थ दिव्यकवचधारी होने के कारण चर्चित हो चुका था। कुन्ती उसे खोजने के लिए दूत भेजती है और साथ मे उसे पहिचानने के सूत्र देती है। दूतों ने उसे पहचान लिया; और उसे ज्ञात हो गया कि यह 'कवचकुण्डलधारी' बालक उसका श्रेष्ठ पुत्र अंगदेश में एक सूत के घर में पल रहा है। राजदरबार में या रणमण्डप में जब भी उसे कर्ण दिखाई देता, उसकी आँखें छलछला उठतीं। कर्ण उसकी इस भाव विह्वल दशा देखकर रोमांचित हो जाता। पार्थ से मिलने के लिए वह अधिरथ के घर जाती रहती। राधा और अधिरथ तो उसे राजरानी मानते थे। कर्ण भी उसे देखते ही उसके चरण स्पर्श करने के लिए लपक उठता। उसे तो कुन्ती का पुत्र होने का तब ज्ञान हुआ जब सूर्यदेव ने प्रकट होकर उसे इन्द्र को दान देने से विरत होने के लिए कहा। उसे समझते देर न लगी कि वह कुन्ती का पुत्र है। उसने उनकी बात नहीं मानी और इन्द्र को सादर दान दिया।

दुर्योधन ने युद्ध की अपरिहार्यता पर विचार करने के लिए वरिष्ठ जनों को आमंत्रित किया था। उस सभा में श्रीकृष्ण ने समस्त उपस्थित शूरवीरों और वृद्धजनों को कुन्ती के संदेश से अवगत कराया। भीष्म, द्रोण, विदुर, यहाँ तक कि स्वयं श्रीकृष्ण दुर्योधन को समझा-समझाकर हार गये। सभा समाप्त होते ही जब सब प्रस्थान करने लगे तब श्रीकृष्ण ने कर्ण को एकान्त में ले जाकर कहा- कर्ण! तुमने वेदवेत्ताओं की बहुत सेवा की है, परमार्थ तत्त्व से अवगत हो किन्तु तुम्हें नहीं मालूम कि तुमने कुन्ती के गर्भ से कन्यावस्था में जन्म लिया है। धर्मानुसार तुम भी पाण्डु के ही पुत्र हो, पाण्डव हो; और ज्येष्ठ होने के नाते राज्याधिकारी हो। पितृपक्ष से पाण्डव और मातृपक्ष से यादव हो। इससे तो तुम्हारा राज्यपद पर अधिकार और भी दृढ़ हो जाता है।

कर्ण मुस्कुराया, 'केशव! सुहृद होने के नाते आपने मेरे भले के लिए जो भी कहा, वह सब मुझे ज्ञात है। कन्यावस्था में सूर्यदेव से गर्भ धारण कर माता कुन्ती ने अपने कन्यात्त्व की रक्षा के लिए उनकें ही परामर्श पर मुझे पिटारी में अच्छी तरह सुरक्षित कर नदी में बहा दिया था। पिटारी अश्वनदी से चर्मण्वती, चर्मण्वती से यमुना और यमुना से गंगा में वहाँ पहुँची जहाँ अधिरथ पत्नी

राधा के साथ उपस्थित थे। उनकी दृष्टि पिटारी पर पड़ी। उन्होंने पिटारी निकलवायी, खुलवाई; और मुझे देखकर दंग रह गये। उन्होंने मुझे राधा की गोद में डाल दिया। पुत्र-प्राप्ति के उछाह में उनका मातृत्त्व उदका और उनके स्तनों में दूध उतर आया। उन्होंने मुझे अपना क्षीरपान कराया और बाल्यावस्था से लेकर आज तक मेरा पालन-पोषण किया। अब आप ही बताइये गोविन्द, धर्म को जानने वाला कोई पुरुष राधा का पिण्ड कैसे छोड़ सकता है। मेरे जातकर्मादि भी उन्होंने किये, वसुषेण नाम दिया, सूत जाति की स्त्रियों से मेरा विवाह कराया। उनसे मेरे बेटे-पोते आदि हुए, अपने सिरसे इस संसार को कैसे त्याग दूँ। दुर्योधन ने मुझे पहचान दी, मेरे ही भरोसे शस्त्र उठाने का साहस किया, और मुझे इस समर में अर्जुन के साथ युद्ध करने का दायित्त्व सौंपा है। अब यदि मैं अर्जुन के साथ युद्ध नहीं करूँगा तो हम दोनों की कीर्ति को धब्बा लगेगा। अच्छा हो मधूसूदन! हम अभी वचनबद्ध हो लें कि हमारी जो गुप्त बात हुई है, वह हम तक ही रहेगी। यदि धर्मात्मा युधिष्ठिर को मेरे कुन्तीपुत्र होने का गुप्त रहस्य ज्ञात हो गया तो वे राज्य ग्रहण नहीं करेंगे। राज्य मुझे दे देंगे; मैं वह दुर्योधन को दे दूँगा। मेरी दृढ़ इच्छा है नारायण, कि जिनका नेतृत्त्व श्रीकृष्ण और योद्धा अर्जुन-नारायण और नर हों, वे जितेन्द्रिय, धर्मात्मा युधिष्ठिर ही राज्य करें। मैंने दुर्योधन की प्रसन्नता के लिए जो कटु शब्द पाण्डवों के तिरस्कार में कहे, उस कुकर्म के कारण पश्चात्ताप में डूबा हूँ। इस पश्चात्ताप से खुद को मुक्त नहीं कर पा रहा हूँ।

महाबाहो! आप जानते हैं कि अब पृथ्वी के संहार का समय निकट है। मैं, शकुनि, दु:शासन और दुर्योधन तो निमित्त मात्र हैं। आप जानबूझकर मुझे मोह में मत डालिये। आप जानते हैं कि पृथा से संसर्ग के पूर्व मेरे पिता सूर्य ने खुद को दो रूपों में बाँट लिया था- एक रूप से जग को प्रकाशित कर रहे थे; और दूसरे रूप में गर्भ में। महात्मा विदुर तो सूर्य के अंश हैं। उन्हें धर्म का जितना ज्ञान है। वह कह चुके हैं कि इस विनाश की जड़ में मैं, और केवल मैं हूँ क्योंकि कलियुग के अवतार दुर्योधन को मैंने ही संबल प्रदान किया है। काश! मुझे वह अपनी मैत्री में न बाँधता! दुर्योधन के साथ उसका प्रिय चाहने वाले सब यमराज के घर जाने वाले हैं। मेरी माता और आपकी बुआ ने जीवन भर दु:ख भोगा है केशव। वह आपसे क्षण भर भी विमुख नहीं होना चाहती; आपसे वर में दु:ख ही माँगेगी। आपके पास उसकी कमी नहीं है।

समागम में अपने अपनी बात तो कह ली, मैं अपनी बात नहीं कह पाया, ' कर्ण ने किंचित् क्षोभ के स्वर में कहा तो श्रीकृष्ण ने उसे अपने निकट समीप लिया ताकि वह यदि प्रकट कुछ कहने में संकोच का अनुभव कर रहा है, तो उनके कान में कह ले, और बोले, ' बोलो, खुलकर बोलो। मैं सुनने के लिए प्रस्तुत हूँ। कैसी भी कड़वी बात होगी, मैं धैर्यपूर्वक सुनूँगा और जो कुछ भी मुझसे हो सकेगा, करूँगा। यह सुनते ही कर्ण के नैन भर आये, जैसे वह बहुत बड़ी विपदा से उबर आया

हो, विनय करते हुए बोला, जनार्दन! माता कुन्ती का वक्तव्य इतना सारगर्भित था तो एक बार तो मेरा मन हुआ कि चिल्लाकर कह दूँ कि मैं इस युद्ध से अपने को विरत करता हूँ क्योंकि इसमें मुझे अधर्म, और केवल अधर्म ही अपनी जय हेतु विनाश की ओर हम सबको ले जा रहा है किन्तु जब मेरी दृष्टि नतमुख दुर्योधन पर पड़ी, तो मैं रुक गया। मैं अपने मित्र को रुआँसा नहीं देख सकता। मुझे उसको दिये हुए वचन से किसी भी कीमत पर विमुख नहीं हो सकता। किन्तु मेरी दृष्टि में माता कुन्ती उभर आई। क्षत्राणी अपने कर्त्तव्य को नहीं भूली है किन्तु वह अपने मातृत्व के सन्मुख नत है और कुछ न कुछ अवश्य करेगी। मैं समझता हूँ, आप समझ रहे हैं कि वे कल मुझसे उगते सूरज के सामने दान माँगने जरूर आयेगी; और अपने अनुकूल न हो पाने की विवशता को वे अपना तिरस्कार न समझें; और न ही ऐसा सोचकर संतप्त हों। आप उन्हें समझा सकते हैं किन्तु नहीं...रहने दीजिये। अपनी बुआ को द्विविधा में डालने का कर्म आपसे नहीं हो सकेगा; मैं ही ऐसा कुछ करूँगा कि वे मेरे वध को विधिलेख मानकर उद्विग्न नहीं होगी; किन्तु जब भी जब मेरा उनसे सामना होगा, तब मैं खुद को अपने मन की व्यथा से उन्हें अवगत कराये बिना न रहूँगा;ज़ोर देकर कहूँगा- माँ, जन्म देते ही मुझे त्याग कर आपने अच्छा नहीं किया। आपने धर्मनाश के द्वार खोल दिये हैं। तुम्हारे इस प्रयास के कारण ही मैं **'नियंत कुरु कर्म त्वं'** का यश प्राप्त नहीं कर सका। इससे बढ़कर मेरा अहित कोई नहीं कर सका। फिर भी आपका यह उद्योग निष्फल नहीं होगा- मुझे केवल अर्जुन से युद्ध करना है। उसके वध से ही मुझे सुयश प्राप्त होगा। हम दोनों में से एक के खेत रहने पर भी तुम्हारे पाँच पुत्र बचे ही रहेंगे। तुम्हारे सभा में दिए गए वक्तव्य से जनार्दन जगती की माताओं के लिए प्रेरणास्रोत बनायेंगे। तुम खुद को दोष मत देना। जो रोका नहीं जा सकता, उसका प्रयत्न करने पर भी में असफल होने का क्षोभ मत पालना। मैं कितना धृष्ट हूँ कि जनार्दन की बुआ को, जो सब जानती है, उसे समझाने का यत्न कर रहा हूँ। उपदेश दे रहा हूँ कि जो भी हो रहा है माता, जनार्दन की इच्छा से हो रहा है। आज्ञा...।

श्रीकृष्ण ने उसका प्रगाढ़ आलिंगन किया और कहा, निःसन्देह अब यह पृथ्वी निनाश के मुहाने पर आ खड़ी हुई है। इसी से मेरे बोल तुम्हारे गले नहीं उतर रहे हैं। जब विनाशकाल सन्निकट होता है, तब अन्याय भी न्याय-सा दिखने लगता है।

- आई. 1/2, वर्धमान ग्रीन पार्क, अशोका गार्डन, भोपाल - 462023।
मो. 9630419354

धर्म की रक्षा के अभाव में असंभव है हमारी स्वयं की रक्षा

– सीताराम गुप्ता

कहा गया है कि **धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः** अर्थात् मरा हुआ धर्म मारने वाले का नाश करता है और रक्षित किया हुआ धर्म रक्षक की रक्षा करता है। सामान्य जीवन में भी यदि कोई किसी व्यक्ति का वध कर देता है तो मृतक के पक्ष के लोग उसका वध करने के लिए पागल हो उठते हैं और कई बार परस्पर प्रतिशोध लेने का ये सिलसिला कई पीढ़ियों तक चलता रहता है। यदि हम किसी व्यक्ति की सहायता करते हैं या किसी के जीवन की रक्षा करते हैं तो वो भी हमारी सहायता करने अथवा हमारे जीवन की रक्षा करने के लिए हमेशा तत्पर रहता है। कई बार देखा गया है कि विषम परिस्थितियों में यदि हम किसी की सहायता अथवा किसी से उसका बचाव कर देते हैं तो वो व्यक्ति जीवनभर हमारी सहायता व रक्षा करता रहता है। धर्म की भूमिका भी बिल्कुल ऐसी ही होती है। धर्म की रक्षा करने अथवा एक बार स्वयं में धर्म स्थापित करने के उपरांत धर्म सदैव हमारी रक्षा करता रहता है।

इसी प्रकार से यदि हम सुरक्षा के नियमों का पालन करते हैं तो वे नियम हर हाल में हमारी सुरक्षा करने में सक्षम होते हैं लेकिन यदि हम सुरक्षा के नियमों को तोड़ते है तो हमारा जीवन संकट में पड़ जाता है। कई बार हम देखते हैं कि किसी नदी अथवा झील के किनारे बोर्ड लगा होता है कि यहाँ नहाना अथवा पानी में जाना मना है। यदि हम इस नियम का पालन करते हैं तो ये नियम हमारी रक्षा करता है लेकिन यदि हम इस नियम को तोड़कर पानी में चले जाते हैं तो बहुत संभव है कि हम डूब जाएँ। धर्म भी बिलकुल वैसा ही व्यवहार करता है। यदि हम धर्म का पालन करते हैं तो धर्म हमारी हर प्रकार से रक्षा करता है लेकिन यदि हम धर्म का पालन करने में चूक जाते हैं तो वही धर्म हमारे पतन अथवा विनाश का कारण बन जाता है।

पश्न उठता है कि मरे हुए धर्म से क्या तात्पर्य है और रक्षित किया हुआ धर्म कैसे धर्म की रक्षा करने वाले की रक्षा करता है? इन प्रश्नों के उत्तर देना सरल है यदि हम धर्म को समझ लें। धर्म क्या है? धर्म की अनेकानेक व्याख्याएँ व परिभाषाएँ मिलती हैं। धर्म स्वभाव को भी कहते हैं। इस दृष्टि से हमारा व्यवहार भी धर्म ही हुआ। लेकिन हर प्रकार का व्यवहार धर्म कैसे हो सकता है? वास्तव में हमारा अच्छा व्यवहार व हमारी अच्छी आदतें ही वास्तविक धर्म है। धर्म की एक अत्यंत प्रचलित परिभाषा मिलती है–

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रिय निग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्म लक्षणम्।।

धैर्य, क्षमा दम (संयम), चोरी न करना, शुचिता (स्वच्छता), इंद्रिय-संयम, बुद्धि, विद्या,

सत्य और अक्रोध (क्रोध न करना) ये दस गुण ही धर्म के महत्त्वपूर्ण लक्षण माने गए हैं। कुछ अन्य परिभाषाओं में धर्म के इन लक्षणों के अतिरिक्त अन्यान्य लक्षणों की चर्चा भी की गई है। कहा जाता है कि जिसे धारण किया जाए वही धर्म है। यदि व्यक्ति ने इन विभिन्न लक्षणों को धारण किया है तभी वह धार्मिक हो सकता है अन्यथा नहीं।

कहने का तात्पर्य यही है कि स्वयं में अच्छी आदतें विकसित करना ही धर्म हैं। देश व काल के अनुसार इन आदतों में अंतर भी हो सकता है लेकिन जो अच्छी आदतें नहीं हैं जिनसे व्यवहार दूषित या विकृत होता है उन्हें धर्म में सम्मिलित नहीं किया जा सकता। धर्म केवल सदुणों का समुच्चय ही हो सकता है। धर्म न केवल हमारे विकास में सहायक होता है अपितु एक अच्छे समाज के निर्माण में भी सहायक होता है अत: कोई भी बात जो हमारे सकारात्मक रूप से आगे बढ़ने में सहायक हो धर्म ही है। यहाँ सकारात्मक रूप से आगे बढ़ने पर बल दिया गया है। सबसे बड़ी सकारात्मकता तो यही है कि हमारे किसी भी प्रकार के क्रियाकलापों से दूसरों के विकास में बाधा उत्पन्न न हो। यदि हमारे किसी कार्य से चाहे वो कितना भी अच्छा क्यों न हो दूसरों के विकास में बाधा उत्पन्न होती है या अन्य किसी भी प्रकार की परेशानी होती हे तो उसे धर्म की श्रेणी में नहीं रखा जा सकता। इस दृष्टि से किसी का जी न दुखाना भी धर्म है। करुणावतार बुद्ध ने कहा है कि- **सर्वेषु भूतेषु दया हि धर्मः** अर्थात् सभी जीवों के प्रति दयाभाव ही धर्म है।

महाभारतकार ने भी यही कहा है- परोपकारः पुण्याय पापाय परपीडनम् अर्थात् दूसरों की भलाई पुण्य है और दूसरों को कष्ट पहुंचाना पाप है। गोस्वामी तुलसीदास ने भी प्रकारांत से इसी बात को दोहराया है-

पर हित सरिस धर्म नहिं भाई।
पर पीड़ा सम नहिं अधमाई।।
निर्नय सकल पुरान बेद करा।
कहेउँ तात जानहि कोबिद नरा।।
नर सरीर धरि जे पर पीरा।
करहिं ते सहहिं महा भव भीरा।।
करहिं मोह बस नर अघ नाना।
स्वारथ रत परलोक नसाना।।

अर्थात् दूसरों की भलाई के समान कोई धर्म नहीं और दूसरों को कष्ट देने के समान कोई अधर्म नीचता अथवा पाप नहीं। यही समस्त पुराणों और वेदों का सार है। विद्वान् लोग यह जानते हैं। मनुष्य का शरीर पाकर भी जो लोग दूसरों को कष्ट पहुँचाते हैं उन्हें स्वयं संसार के महान् कष्ट भोगने पड़ते हैं। और इस प्रकार स्वार्थ, अज्ञानता अथवा मोहवश होकर जो अनेकानेक पाप कार्मों में लिप्त रहते हैं उनका परलोक भी नष्ट हो जाता है। गोस्वामी जी आगे कहते हैं-

परहित है जिनके मन माहीं।
तिन कहुँ जग दुर्लभ कछु नाहीं।।

अर्थात् जिनके मन में परहित अथवा दूसरों की भलाई बनी रहती है उनके लिए संसार की कोई भी वस्तु ऐसी नहीं है जो उन्हें न मिल सके। दूसरों के ज़ख़्मों पर मरहम लगाने वाला, सच्चे मन से लोगों की सेवा करने वाला आध्यात्मिक,

अधिभौतिक व अधिदैविक तीनों प्रकार की व्याधियों से मुक्त होकर आनन्दपूर्वक जीवन ही नहीं व्यतीत करता वह धर्म का भी सही अर्थों में पालन करता है और स्वस्थ व प्रसन्न रहते हुए यह लोक ही नहीं परलोक भी सँवार लेता है। इस प्रकार से धर्म की रक्षा द्वारा हम पूरी तरह से अपनी ही रक्षा करते है। धर्म की रक्षा के अभाव में स्वयं की रक्षा करना असंभव है।

इसी में धर्म प्रासंगिकता है। जो धर्म, धर्म के लक्षण अथवा क्रियाकलाप व्यक्ति में अच्छे गुणों का विकास नहीं करते वे धर्म नहीं हो सकते। व्यक्ति ही नहीं समाज के संदर्भ में भी ये उतना ही अनिवार्य है। जो समाज धर्म अथवा उदात्त जीवन मूल्यों की रक्षा करने में सक्षम होता है वही आगे बढ़ता है। कर्मकांड अथवा प्रतीक धर्म नहीं होते। ये तो मात्र हमें स्मरण कराने का माध्यम होते हैं कि हमें इनसे जुड़े उदात्त जीवन मूल्यों का पालन करना है। जब हम किसी की पूजा अथवा आराधना करते हैं तो धर्म यही है कि हम अपने आराध्य के गुणों को जीवन में उतारें। जब हम ऐसा नहीं करते तो धर्म पाखंड बन जाता है और ऐसा धर्म अथवा पाखंड हमारी रक्षा नहीं करता। सदगुणों की रक्षा नहीं करेंगे अथवा उन्हें अपने व्यवहार में नहीं लाएँगे तो इससे क्या होगा? स्वाभाविक है कि हममें सदगुणों के स्थान पर अवगुणों की भरमार हो जाएगी और वे अवगुण हमें नष्ट करने के लिए पर्याप्त होंगे। इससे स्पष्ट हो जाता है कि मरा हुआ धर्म मारने वाले का नाश कर देता है।

धर्म के किसी भी लक्षण को ले लीजिए। यदि हम उसकी रक्षा नहीं करेंगे अथवा उसे अपने व्यवहार में नहीं लाएँगे तो वो लक्षण नष्ट हो जाएगा और उसके स्थान पर जो उसका विपरीत लक्षण अथवा दुर्गुण होगा प्रकट होने लगेगा और हमारा विनाश कर डालेगा। हम किसी भी लक्षण अथवा सद्गुण की बात करें उसी पर ये नियम लागू होगा। हम धर्म के एक लक्षण अस्तेय अथवा चोरी न करने की बात करते हैं। यदि हम अपने आचरण में दृढ़तापूर्वक इस लक्षण को विकसित नहीं करेंगे तो स्वाभाविक है कि हममें चोरी की आदत विकसित हो जाएगी और ये आदत हमें न केवल दुनिया का एक खराब आदमी बना देगी अपितु हमारा पूरी तरह से विनाश भी कर सकती है। चारी करते-करते हम हत्यारे व डाकू भी बन सकते हैं और सज़ा के तौर पर हमारी जीवन लीला भी समाप्त हो सकती है। सद्गुणों अथवा धर्म का पालन करने में कुछ कठिनाईयाँ आ सकती हैं लेकिन इससे उसी अनुपात में हमें संतुष्टि भी मिलती है लेकिन धर्म का पालन न करने पर हम सदैव असंतुष्ट व तनावयुक्त रहते हैं जो हमारे स्वास्थ्य के लिए भी घातक होता है। अतः धर्म का पालन न करने से हमारा जीवन भी संकट में पड़ जाता है।

- ए.डी. - 106-सी, पीतमपुरा, दिल्ली - 110034।
मो. 95556-22323

ISSN 0505-7523

विश्वज्योति वर्षः ७२, सं. ११
फरवरी ,२०२४

नशा मुक्ति हेतु मनोवैज्ञानिक उपाय

- अखिलेश निगम 'अखिल'

वर्तमान समाज में दो प्रकार के वर्ग या परिवार हैं एक तो ऐसा वर्ग या परिवार जो पूर्णरूपेण नशा मुक्त है और दूसरा वह जिसके परिवार का एक या एक से अधिक व्यक्ति किसी भी प्रकार की नशीली वस्तु का सेवन किसी न किसी रूप में कर रहे हैं।

मुझसे नशा मुक्ति के संदर्भ में अनेक लोगों ने परामर्श माँगा और मुझसे कहा कि आप स्वयं नशा-मुक्ति आन्दोलन चला रहे हैं किन्तु आप हमें यह तो बताइये कि किस प्रकार नशीली वस्तुओं का परित्याग किया जाय?

नशा मुक्ति निवारण रूपी गम्भीर विषय पर व्यापक चिन्तन, मनन एवं अध्ययन करने पर एक बात तो यह स्पष्ट है कि किसी भी व्यक्ति या उसके परिवार को किसी भी प्रकार के नशीली वस्तु के सेवन से छुटकारा दिलाने के लिए समाज के सभी वर्गों का सहयोग आवश्यक है इसमें उस व्यक्ति के रिश्तेदार, मित्रगण, पडोसियों, शिक्षक, चिकित्सक एवं क्षेत्रवासियों का सक्रिय सकारात्मक सहयोग होना चाहिए।

इसके अतिरिक्त कुछ मनोवैज्ञानिक उपाय भी हैं जिन्हें अपनाकर व्यक्ति स्वयं अपना या अपने परिवार के किसी सदस्य को मादक पदार्थ के सेवन से मुक्ति दिला सकता है। उसमें से कुछ व्यवहारिक उपाय निम्न है।

१. आत्म-विश्वास जाग्रत करें-

प्राय: यह देखा गया है कि प्रत्येक व्यक्ति के नशीले वस्तु के सेवन के अलग-अलग कारण होते हैं। कुछ लोग अपना तनाव, दूर करने के लिए किसी नशीली वस्तु का सेवन करने लगते है तो अधिकांश उच्च वर्ग के लोग इसे अपनी उच्चता की पहचान मानते हैं या भौतिकता की दौड़ में अपने को अत्याधुनिक सिद्ध करने के लिए ऐसा करते हैं, वहीं युवा वर्ग अज्ञानतावश अपनी कुंठा, निराशा, बेरोजगारी, कैरियर या परीक्षा में असफलता के पश्चात् गलत संगति में पड़कर इसके दुष्चक्र में फँस जाता है। निर्धन वर्ग के लोग अपनी अशिक्षा, पारिवारिक या सामाजिक परम्परा, निर्धनता एवं एकाकीपन को दूर करने के लिए विभिन्न प्रकार के नशे का सेवन करने लगते हैं। पारिवारिक एवं सामाजिक कलह, रिश्तेदारों से दुश्मनी भी नशाखोरी का प्रमुख कारण है।

विभिन्न प्रकार की परिस्थितियों का सामना करने के लिए नशाखोरी के दलदल में फँसे व्यक्ति को सबसे पहले अपना आत्म-विश्वास जाग्रत करना पड़ेगा उसे अपने ऊपर स्वयं भरोसा करना

चाहिए कि वह नशीली वस्तु को छोड़ सकता है, अपने जीवन की उपलब्धियों को याद करें और मन में सकारात्मक विचार लाएँ। परिवार के सभी सदस्य नशे से ग्रस्त व्यक्ति के आत्म-विश्वास को उसके कारणों का निदान करते हुए उसे आगे बढ़ाएँ। उसके प्रति हेय दृष्टिकोण न रखते हुए उसे अपना सहारा प्रदान करें।

२. आत्म विश्लेषण एवं संयमित दिनचर्या-

नशे से ग्रस्त व्यक्ति को अपनी प्रतिदिन की दिनचर्या में निरन्तर सुधार करना चाहिए, इसके लिए वह स्वयं अपना आत्म-विश्लेषण कर अपनी दिनचर्या को एक डायरी में लिखे फिर धीरे-धीरे उसमें क्या सुधार कर सकता है वह स्वयं सोचे, और उस पर दृढ़तापूर्वक चलने का प्रयास करे। कुछ दिनों के पश्चात् आप स्वयं देखेंगे कि हमारे जीवन में परिवर्तन घट रहा है।

यदि कोई किशोर नशे के चंगुल में फँस गया है तो परिवार के वरिष्ठ सदस्यगण उसकी दिनचर्या पर सतर्क दृष्टि रखते हुए उसे सकारात्मक सहयोग के माध्यम से परिवर्तित करें क्योंकि किशोरावस्था में भटकने की सर्वाधिक आशंका होती है। अतः बालकों की गतिविधियों पर सतर्कता से दृष्टि रखें, उनके शौक और मित्रों के सम्बन्ध में जानकारी रखें तथा अपने बच्चों की समस्याओं की जानकारी रखें, उनमें रूचि लें तथा सुलझाने में सहयोग करें उनको पारिवारिक स्नेह दें कभी भी उन्हें उपेक्षित न करें तथा ऐसी दिनचर्या बनाएँ जिसमें उसकी रूचि के कार्य अवश्य सम्मिलित हों ताकि धीरे-धीरे उसकी नशा लेने की आदत छूटने लगे।

३. योग, ध्यान एवं प्राणायाम-

प्रतिदिन सुबह या शाम को योग, ध्यान एवं प्राणायाम या भ्रमण के लिए समय अवश्य निकालें इससे जहाँ एक ओर शरीर की विभिन्न प्रकार के रोगों से लड़ने की प्रतिरोधक क्षमता बढ़ती है वहीं दूसरी ओर मन, मस्तिष्क शान्त एवं प्रसन्नचित्त रहता है तथा धीरे-धीरे नकारात्मक विचार समाप्त होते हैं तथा सकारात्मक विचारों का सूर्य उदित होने लगता है।

४. गलत संगति को छोडें-

आप ऐसे मित्रों एवं रिश्तेदारों से नाता तोड़िये जो आपको किसी भी प्रकार की नशीली वस्तु के सेवन के लिए दुष्प्रेरित करते हों क्योंकि वास्तव में ऐसे लोग आपके हितैषी नहीं बल्कि सबसे बड़े शत्रु होते हैं क्योंकि वे प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से आपके धन, घर, परिवार एवं शरीर को बर्बाद कर रहे होते है। आप अपने भविष्य के बारे में यह भी सोचिए और अपने आप से प्रश्न कीजिए कि जब मेरा सब कुछ नष्ट हो जाएगा तो क्या ऐसी परिस्थिति में आपके ये मित्र एवं शुभचिन्तक आपके साथ खड़े होंगे यदि आपका मन, मस्तिष्क एवं आत्मा इसका उत्तर नहीं में दे रही है तो आप अभी से ऐसे लोगों से सावधान हो जाइए।

५. सच्चे मित्र एवं हितैषी की तलाश करें-

एक ऐसा मित्र खोजिए जो आपकी तरह ही नशीली वस्तु का परित्याग करना चाहता हो,

उसके साथ बैठकर नशीली वस्तु के सेवन के दुष्परिणाम पर चर्चा, परिचर्चा करें और एक-दूसरे की हिम्मत बढ़ाएँ इसके साथ ऐसे लोगों से मेल-जोल बढ़ाइये जो किसी प्रकार की नशीली वस्तु का सेवन नहीं करते हैं, और उनसे इस सम्बन्ध में सलाह लें। धीरे-धीरे आपको उसका एवं अन्य लोगों का प्यार मिलने लगेगा और आप में आत्म-विश्वास बढ़ेगा।

६. नशीली वस्तु के सेवन में धीरे-धीरे कमी लाना-

मनुष्य अपने अधिकतर कार्य अपनी आदतों के वशीभूत होकर करता है। जब कोई मनुष्य नशीली वस्तु का लती हो जाता हे तो उसे एकदम से नहीं छोड़ा जा सकता है क्योंकि ऐसी परिस्थिति में वह नशा उसकी शारीरिक एवं मानसिक कमजोरी बन जाता है जो व्यक्ति को अन्दर ही अन्दर खोखला करने लगता है।

नशे की आदत छोड़ने के लिए उस नशीली वस्तु के सेवन की मात्रा धीरे-धीरे घटाएँ उसके लिए सबसे अच्छा उपाय है कि जितनी मात्रा का सेवन आप प्रतिदिन करते हैं वह एक दिन पूर्व ही खरीद लीजिए और अगले दिन उतनी ही मात्रा का सेवन करें फिर धीरे-धीरे सेवन करने वाली नशे की मात्रा को कम खरीदें- उदाहरण के लिए यदि आप सिगरेट, गुटखा, पान-मसाला या तम्बाकू का सेवन करते हैं तो एक दिन आप यह गिनिए कि कितनी सिगरेट, बीड़ी, गुटखा, पान-मसाला का सेवन किया या कितनी मात्रा में तम्बाकू या शराब का सेवन की जाने वाली वस्तु को एक दिन पूर्व ही खरीद लीजिए फिर धीरे-धीरे उसकी मात्रा घटाना प्रारम्भ कीजिए आप देखेंगे कि आपकी नशा सेवन की मात्रा घट रही है फिर बीड़ी सिगरेट, तम्बाकू या गुटखा की जगह सौंफ और मिश्री मिलाकर रखें जब ज्यादा तलब लगे तो उस मिश्रण का सेवन करें या लौंग, इलायची, दालचीली आदि का सेवन करें। नशीले पदार्थों के सेवन के विकल्प के रूप में विभिन्न प्रकार के फलों का सेवन को प्राथमिकता दें इससे जहाँ एक ओर स्वास्थ्य लाभ भी होगा वहीं दूसरी ओर नशीले पदार्थों में धन का अपव्यय भी नहीं होगा।

७. नशे की तलब लगने पर-

जब नशीली वस्तु के सेवन की ओर से तलब लगे तो-

१. अपनी तलब को थोड़ी देर भूला दें।
२. धीरे-धीरे घूँट लगाकर पानी पिएँ।
३. गहरी साँस ले।
४. ईश्वर से मन ही मन प्रार्थना करें।
५. तलब से ध्यान बँटाने के लिए अपनी अभिरूचि का मनपसंद सकारात्मक कार्य करें।
६. अपनी पसंद की कोई अच्छी पुस्तक पढ़ना प्रारम्भ कर दें।

इस प्रकार आप देखेंगे कि नशे का ज्वार धीरे-धीरे ठंडा हो रहा है और आपकी नशा सेवन की तलब लगभग खत्म हो गई है यदि ऐसा हो गया है तो आप अपने विजेता मानकर गौरव का अनुभव करें।

८. स्वयं को व्यस्त रखें-

व्यक्ति खालीपन को भरने के लिए नशे का सहारा लेता है लेकिन काम काज में लगे रहने से मन को यह सब सोचने का समय नहीं मिलता इसलिए आवश्यक है कि एक कार्य पूरा होते ही अगले सार्थक कार्य की योजना बनाने और उसे साकार करने में स्वयं को व्यस्त रखें। खाली दिमाग शैतान का घर कहा गया है उसे इधर-उधर की व्यर्थ भाग-दौड़ से बचाने के लिए उसकी लगाम अपने हाथ में रखें।

अभिरुचि अपनाएँ-

नशा मुक्ति के लिए सकारात्मक ऊर्जा बहुत महत्वपूर्ण है इसके लिए सबसे अच्छा यह है कि आप अपने जीवन को नये ढंग से जीने के लिए कोई न कोई अभिरूचि जाग्रत करें।

इस संबंध में मेरा मानना है कि प्रत्येक व्यक्ति एक अनगढ़ पत्थर की भाँति होता है, वह ईश्वर की एक अद्‌भुत रचना है जिस प्रकार प्रत्येक व्यक्ति की मुख-मुद्रा, चेहरा एवं बनावट में कुछ न कुछ अन्तर होता है उसी प्रकार उसके बहुत से गुण ऐसे होते हैं जो उसे अन्य व्यक्ति से अलग करते हैं, बस आवश्यकता यह है कि व्यक्ति स्वयं अपने आपको जाने, पहचाने और अपनी अभिरुचि को जाग्रत करे, धीरे-धीरे आप स्वयं देखेंगे कि आपके चारों ओर सकारात्मक ईश्वरीय ऊर्जा बह रही है और आपको अपनी अभिरुचि का कार्य करने में बड़ा आनन्द आ रहा है, इस प्रकार धीरे-धीरे स्वयं नकारात्मक प्रवृत्तियों का अन्तर होगा।

अभिरुचि में उत्तम एवं आध्यात्मिक साहित्य का अध्ययन, मधुर संगीत का श्रवण, बागवानी, गायन-वादन का अभ्यास, पशुपालन, चित्रकला, स्टाम्प कलेक्शन, कवि गोष्ठी एवं सम्मेलन में सम्मिलित होना, खेलकूद, योग एवं ध्यान को अपनी दिनचर्या का नियमित अंग बनाना आदि प्रमुख अभिरुचियाँ हैं, इसके अतिरिक्त मातायें, बहनें अपनी विभिन्न प्रकार की अभिरूचियाँ ज़ाग्रत कर सकती हैं जो उन्हें एक ओर व्यस्त बनाए रखें तथा दूसरी ओर पारिवारिक माहौल को सुखमय बनाते हुए आपके आर्थिक आधार को और अधिक मजबूती प्रदान करें।

१०. नशीली वस्तु के दुष्प्रभाव पर चिन्तन मनन-

आप अपना आत्म-विश्वास मजबूत करने के लिए प्रत्येंक शाम उस नशीली वस्तु को अपने सामने रखकर सोचें कि यह हमारा कितना शारीरिक, मानसिक और आर्थिक शोषण कर रहा है, इसके कारण कितना पारिवारिक अशान्ति उत्पन्न हो रही है आस-पास के लोग हमें कितना घृणित भाव से देख रहे है, इसने कितना हमारे शरीर को गलाया, कितना पैसा नष्ट हुआ और हमारी सामाजिक प्रतिष्ठा को कितना नुकसान पहुँचा, इसके साथ अगले दिन छोड़ने का संकल्प लें सुबह जब भी काम पर जाये तो उस दिन नशीले वस्तु के सेवन की मात्रा को कम करने का संकल्प अवश्य लें, इससे आप पूर्णरूपेण नशे के

दलदल से बाहर निकल आएँगे।

११. क्या आपमें अपने परिवार के साथ नशा करने की हिम्मत है ?

क्या आपमें अपने परिवार के साथ नशा करने की हिम्मत है। आपमें से लगभग सभी लोगों का उत्तर नहीं में होगा, आखिर क्यों? आप अच्छी चीजें अपने परिवार में माता, पिता, भाई-बहन, पत्नी, बच्चों एवं अन्य सदस्यों के साथ भोजन या पेय पदार्थ के रूप में लेना पसंद करते हैं तो आप अपनी मनपसंद नशीली वस्तु को अपने परिवार के सदस्यों के साथ सेवन करने की हिम्मत क्यों नहीं जुटा पाते हैं क्योंकि आप स्वयं जानते हैं कि नशा करना बहुत ही गलत एवं घृणित कार्य है और मैं नशे के दुष्चक्र में फँस गया हूँ कोई दूसरा न फँसने पाये।

किन्तु आप यह भूल रहे हैं कि यदि आप किसी भी नशीली वस्तु का सेवन कर रहे हैं तो परिवार के अन्य सदस्यों पर भी जाने-अनजाने बुरा अगर पड़ता है। विशेष रूप से बच्चों एवं परिवार के किशोर सदस्यों पर सर्वाधिक मानसिक दुष्प्रभाव पड़ता है वे जिज्ञासा या कौतूहलवश आपके द्वारा सेवन की जा रही नशीली वस्तु को चोरी छिपे सेवन करना प्रारम्भ करने लगते हैं और आपको जब पता चलता है तब तक बहुत देर हो चुकी होती है और आप पाते हैं कि हमारी बुरी आदत ने सिर्फ हमें ही नहीं बल्कि हमारे परिवार को तबाह कर दिया। अब आप अपने आपको ऐसे अँधेरे में पाएँगे जहाँ पर कोई प्रकाश की किरण की कोई सम्भावना नहीं होती है।

निष्कर्षत: यह कहा जा सकता है कि यदि आप ईश्वर द्वारा प्रदत्त, तन, मन, यश-वभैव को सुरक्षित रखना चाहते हैं, निराशा के अन्धकार से निकलकर आशा के दीप जलाना चाहते हैं, अपनी भावी पीढ़ी को अच्छा संस्कार एवं उत्तम शिक्षा देना चाहते हैं, पारिवारिक अशान्ति एवं कलह से सदैव के लिए मुक्ति चाहते हैं और ईश्वर की सच्ची सन्तान बनकर समाज सेवा का कार्य करना चाहते हैं तो आप स्वयं नशीली वस्तु का परित्याग करें और अपने जैसे अन्य मित्रों को भी नशीली वस्तुओं के परित्याग करने के लिए प्रोत्साहित करें यह सदैव ध्यान रखें।

नशा, नाश तन का करे, पीढ़ी को बर्बाद।
'अखिल' नशे को छोड़िए, रहें सदा आबाद।।

- ओम निवास, 51, क्ले स्क्वायर, कबीर मार्ग, लखनऊ - 226001।
मो. 097932-74150

शतकत्रय के रचयिता भर्तृहरि का काव्यवैशिष्ट्य

– मधुसूदन म. व्यास

भर्तृहरि कितने मौलिक है उसके उदाहरण हमें यत्र-तत्र-सर्वत्र अनेक शतकों में मिलते है हमारे महाविद्यालय के लोगो या कोलेज सूत्र के रूप में मेरे द्वारा भर्तृहरि के नीतिशतक में से एक पंक्ति का एक चयन किया गया था विद्या परं दैवतम्... जो कि अन्यत्र उपलब्ध नहीं है एवं अर्थगर्भित भी है। भर्तृहरि के पद्य संस्कृत शिक्षा की दृष्टि से भी अतीव उपयोगी हैं एवं बालशिक्षा के लिए भी उपयुक्त है। भर्तृहरि जैसे महाकवि ने नीति एवं वैराग्य दोनों कृतियों का मंगलाचरण एक समान श्लोक से ही किया है (दिक्कालात् धनवच्छिन्ना) इस से पता चलता है कि कवि निराकार ब्रह्म की उपासना करने वाले वेदांती कवि थे। यद्यपि उनकी कृतियों में शिवभक्ति भी अनवरत रूप से बहुत सारे श्लोकों में प्रकट होती दिखाई देती है गंगा का तट, भगवान् शिव का सानिध्य एवं वाराणसी निवास एवं वैराग्य का आभूषण उन्हें अत्यधिक प्रिय था।

यहां पर मैं एक संशोधन प्रकट करना चाहता हूँ कि सभी शतको का बारीकी से अध्ययन करने के बाद मुझे प्रतीति हुई है कि इस महाकवि ने शार्दूलविक्रीडित छन्द में सर्वाधिक प्रणयन या लेखन किया है मेरी यह स्पष्ट प्रतीति है कि संस्कृत के क्षेत्र में भर्तृहरि नामक तीन व्यक्ति हुए है (१) योग मार्ग के पतंजलि इत्यादि योगिओं की श्रेणी में जो आते है वह भर्तृहरि (२) वैयाकरण भर्तृहरि (३) हमारे शतककार भर्तृहरि चूंकि इन्होंने ही कालजयी कृतिओं में ऐसे रत्नोपम श्लोक लिखे है जो कि स्वयं को सुकवि प्रतिष्ठित करते हैं।

जयन्ति ते सुकृतिनः रससिद्धा कवीश्वराः
नास्ति येषां यशः काये जरामरणजं भयम्।

श्लोक २४, नीतिशतकम्

इन्होंने ही श्लोक के एक चरण में कहा है- **''यदि अस्ति सुकविता राज्येन किम्?''**

डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी ने अपने **''संस्कृत साहित्य का अभिनव इतिहास''** नामक ग्रंथ में भर्तृहरि की प्रतिभा को इन प्रसंशा पुष्पों से पूजा की है- भर्तृहरि की कविता मुख्यस्वरूप से जनजीवन से जुड़ी काव्य धारा से समागम करती हुई अवधूतों या संतों के काव्य की बयानगी भी प्रस्तुत करती है। योगेश्वर एवं भर्तृहरि दोनों ही राजसत्ता को तिनके की तरह झटक देने की बात करते हैं। वे सत्ता में राजाओं को चुनौती देते हैं। इस अर्थ में लोकजीवन पर संस्कृत में काव्य लिखने वाले महान् कवियों की समृद्ध काव्य परंपरा संतो या अवधूतों की काव्यधारा से जुड़

जाती है। इस समागम के एक समर्थ उदाहरण भर्तृहरि है"। (पृष्ठ - १९७)

यहां पर हम देख सकते है कि डॉ. राधावल्लभ जी ने अपने विचार प्रस्तुत किये हैं।

कवि के द्वारा अभिव्यक्त विविध पहलुओं पर हम विचार कर रहे है एवं साथ ही उनकी लेखनी ने जो मौलिकता एवं सार्द्रता से जीवन का मूल्यांकन किया है। उसका एक तरीके से बयान यहां पर है जो काव्यवैशिष्ट्य को भी अनेकशः व्यक्त करता है।

उनके प्रधान तीनों ही शतक मानो जीवन की तीन अवस्थाए हैं। शृंगारशतक मानो युवावस्था के आवेगों एवं कामचेष्टाओं को अभिव्यक्त करता हैं। एवं नीतिशतक भी मनुष्य की प्रौढावस्था के ठहराव या शालीनता को अभिव्यक्त करता है तो जीवन की अंतिम वृद्धावस्था के वैराग्य के भावों को महाकवि भर्तृहरि ने वैरागयशतक में पिरोया है, प्रदर्शित किया है। नीतिशतक अन्य दो शतकों के बीच में है एवं अत्यधिक लोकप्रिय भी है। नीतिशतक के कुछ श्लोक तो एकबार पढ़ने से ही मुखाग्र हो जाते है, उतने सरल एवं कोमलकांत पदावली में विन्यस्त है। जैसा कि "**दाक्षिण्यं-स्वजने, दया पर जाने शाठ्यं सदा दुर्जने....।**"

जो भर्तृहरि यौवनसहज चित्त से "**याम् चिन्तयामि सततं....**" वाला (शृङ्गारिक) श्लोक लिखते है वे ही वैराग्यशतक में जीवन की विफलताओं से परास्त होकर एक अनुठा श्लोक लिख बैठतें है जिसमें हमें भी आत्मप्रतीति का स्वर उठता नजर आता है देखिए-

न ध्यातं पदमीश्वरस्य विधिवत् संसार विच्छित्तये
स्वर्गद्वार कपाटपाटनपटु धर्मोऽपिनोपार्जितः।
नारीपीनपयोधरोरू युगलं स्वप्नेऽपिनालिंगितम्
मातुः केवल मेव यौवनपनच्छेदे कुठारावयम्।।

वैराग्यशतक - श्लोक -११

भर्तृहरि पूर्वावस्था में स्वयं राजा थे अतः जीवन की वास्तविकताओं से वे सुपरिचित थे एवं स्त्रियों के विषय में उनकी भर्त्सना भी उनके शृंगारिक विचारों की भाँती कई बार या बार-बार प्रकट होती है लेकिन एक महाकवि के रूप में उन्होंने जीवन की गहराईयों का स्पर्श किया था एवं मनुष्यों की कुटिल नीति-रीति एवं दैनिक व्यवहार से उनकी प्रतिभा का गठन हुआ था, ऐसा प्रतीत होता है अतः वे "नारी जाने धूर्तता" भी बोल उठाते है।

प्रास्ताविक विलास का अठ्ठाईसवां श्लोक उनकी कविता की स्वाभाविकता का वर्णन करता है। अनूठी बात यह है कि श्लोकान्त में कवि ने समय को प्रणाम किया है पूरा श्लोक द्रष्टव्य है।

सा रम्यानगरी महान्सनृपतिः सामन्तचक्रं च तत्
पार्श्वे तस्य च सा विदग्धपरिषत्ताश्चन्द्रबिम्बाननाः।
उत्सिक्तः स च राजपुत्रनिवहस्ते बन्दिनस्ताः कथाः
सर्वं यस्य वशादगात्स्मृतिरयं कालाय तस्मै नमः।।

भर्तृहरि के कुछ श्लोक हितोपदेश एवं पञ्चतंत्र में भी मिलते हैं इसी से कवि की नीतिपरक लोकप्रियता सूचित होती है जैसा कि परिवर्तिनि संसारे.... वाला श्लोक नीतिशतक के

उपरांत हितोपदेश और पञ्चतंत्र दोनों में पाया जाता है। तो पञ्चतंत्र में "विधिराहो बलवान् इति मे मतिः" वह श्लोक मिलता है। इससे परिलक्षित होता है कि महाभारत, गीता, विदुरनीति, शारंगधरपद्धति, महासुभाषित संग्रह इत्यादि ग्रंथों में जो श्लोक जिस शैली में लिखे मिलते है कुछ वैसे ही अभिव्यक्ति- शैली भर्तृहरि की है फलतः उन ग्रंथों की जैसी लोकप्रियता भी कवि ने प्राप्त की है।

अंततः एक बात भर्तृहरि में विशिष्ट है उसका लेखन या इंगित करना समुचित लगता है जो महाकवि है, जो नीतिमान है वह स्वाभिमानी या स्वमानी भी होता ही है। अतः दो ऐसे श्लोक यहां पर रखना चाहता हूँ जिसमें कवि का सर्वस्वामित्व या व्यक्तित्व की द्रढ़ता का दर्शन होता है। वे राजाओं को संबोधित करके कवि के रूप में अपनी वरीयता- महनीयता या श्रेष्ठता का महाउद्घोष यहां पर करते हैं। दोंने ही श्लोकों की भाषा भी परिमार्जित हैं। एवं दोनों ही श्लोक वैराग्यशतक में उपलब्ध है।

वयमिहपरितुष्टा वल्कलैस्त्वं च लक्ष्म्या
सम इह परितोषो निर्विशेषो विशेषः।
स तु भवति दरिद्रो यस्य तृष्णा विशाला
मनसि च परितुष्टे कोऽर्थावान् को दरिद्रः।।

वैराग्यशतकम् - श्लोक-४८

त्वं राजा वयमुप्यपासित गुरु प्रज्ञाभि मानोन्नताः
ख्यातस्त्वं विभवैर्यशांसि कवयो दिक्षु प्रतन्वन्तिनः।
इत्थं मानद नातिदुरमुभयोरप्यावयो रन्तरे
यद्यरमासु पराङ्मुखोऽसि वयमप्येकान्ततो निःस्पृहः।।

वैराग्यशतकम् - श्लोक- २४

प्रास्ताविकविलास में (श्लोक - ३६) एक ऐसा अनुठा श्लोक कविने रचा है। जिसमें स्त्री का आकर्षक रूप सात क्रियापदों के द्वारा अभिव्यक्त किया है। वह व्याकरण द्रष्टया अनन्य प्रतीत होता है। मुझे लगता है कि यहां पर भी कवि की विशेषता प्रकट होती है। सुनिये....

समोहयन्ति मदयन्ति विडम्बयन्ति
निर्भत्सयन्ति रमयन्ति विषादयन्ति।
एताः प्रविश्य सदयं हृदयं नराणां
किं नाम वामनयनानि समाचरन्ति।।

इस प्रकार शतक काव्यों के प्रणेता होते हुये भी भर्तृहरि महाकवि हैं क्योंकि वे दार्शनिक भी हैं।

- 97, जलदर्शन सोसा, मालपुर मार्ग, मोडासा - 383315 (राज.)।
मो. 94276-93554

PEER REVIEWED JOURNAL
ISSN 0505-7523

विश्वज्योति वर्षः ७२, सं. ११
फरवरी ,२०२४

पितृसूक्त का वर्तमान संदर्भ

- आदित्य आंगिरस

भारतीय ज्योतिष के अनुसार व्यक्ति की कुंडली में शुभ और अशुभ दोनों तरह के योग बनते हैं, व्यक्ति की कुंडली में शुभ योग बनने पर व्यक्ति को जीवन की तमाम सुख-सुविधा, धन-दौलत और राजसत्ता का सुख प्राप्त होता है, वहीं दूसरी तरफ कई जातकों की कुंडली में ग्रह-नक्षत्रों के संयोग से अशुभ योग का निर्माण होता है, इसी अशुभ योग को कुंडली में दोष कहा जाता है, कुंडली दोष कई तरह के होते हैं, अशुभ योग से व्यक्ति के जीवन में संघर्ष बहुत ज्यादा होता है और सफलताएं बहुत कम हासिल होती हैं। हमारे जीवन में कई बार ऐसी समस्याएं आ खड़ी होती हैं जिनका मूलभूत आध्यात्मिक कारण होता है। पूर्वजों की अतृप्ति के कारण उनके वंशजों को होने वाला कष्ट उन कारणों में से एक है जिसे पितृदोष कहा जा सकता है। यह दोष लोगों को किसी न किसी प्रकार से प्रभावित करने वाले अनेक कारणों में यह एक विशिष्ट कारण है जिसके परिणमस्वरूप हमारे सांसारिक जीवन में और आध्यात्मिक साधना में बाधाएं उत्पन्न होती हैं। दैनिक जीवन में पितृदोष के कई लक्षण दिखाई देते हैं उदाहरणार्थ घर में क्लेश, संतान का न होना अथवा दुर्घटना होना या परिवार में विकलांग या अनचाहे बच्चे का जन्म होना या गर्भ धारण न होना। संतान प्राप्ति में रुकावट आना या परिवार के किसी सदस्य का विवाह न होना या परिवार में हर समय किसी न किसी बात को लेकर झगड़ा होना आदि ऐसी ही कुछ समस्याऐं हैं जो पितृदोष के कारण संभव है।

पितृदोष के कारण हमारे सांसारिक जीवन में और आध्यात्मिक साधना में बाधाएं उत्पन्न होती हैं। इस पर अनेक प्रकार के उपाय करने पर भी परिवार के सभी सदस्यों को कई प्रकार की समस्याओं का सामना करना पड़ता है। जिस जातक की कुंडली में यह दोष होता है उसे धन अभाव से लेकर मानसिक क्लेश तक का सामना करना पड़ता है। पितृदोष से पीड़ित जातक की उन्नति में बाधा रहती है।

ज्योतिष के अनुसार कुंडली में पितृदोष का निर्माण कैसे होता है।

ज्योतिष के अनुसार ऐसा माना जाता है जब सूर्य और राहू की युति हो रही हो तो यह माना जाता है कि पितृदोष योग बन रहा है। शास्त्र के अनुसार सूर्य तथा राहू जिस भी भाव में बैठते है,

उस भाव के सभी फल नष्ट हो जाते है। व्यक्ति की कुंडली में एक ऐसा दोष है जो इन सब दु:खों को एक साथ देने की क्षमता रखता है, इस दोष को पितृदोष के नाम से जाना जाता है। यदि पितृदोष का निवारण न किया जाए तो पीढ़ी दर पीढ़ी कुंडली बनता रहता है अथवा जब किसी जातक की कुंडली के लग्न भाव और पांचवें भाव में सूर्य, मंगल और शनि विराजमान हो तो पितृदोष बनता है, इसके अलावा अष्टम भाव में गुरु और राहु एक साथ आकर बैठ जाते हैं तो पितृदोष का निर्माण होता है। जब कुंडली में राहु केंद या त्रिकोण में मौजूद हो तो पितृदोष बनता है, वहीं जब सूर्य, चंद्रमा और लग्नेश का राहु से संबंध होता है तो जातक की कुंडली में पितृदोष बनता है, जब कोई व्यक्ति अपने से बड़ों का अनादर करता है या फिर हत्या कर देता है तो उसे पितृदोष लगता है।

पितृदोष होने पर व्यक्ति के जीवन में संतान का सुख नहीं मिल पाता है। अगर मिलता भी है तो कई बार संतान विकलांग होती है, मंदबुद्धि होती है या फिर चरित्रहीन होती है या फिर कई बार बच्चे की पैदा होते ही मृत्यु हो जाती है। नौकरी और व्यवसाय में मेहनत करने के बावजूद भी हानि होती रहती है। उसके जीवन में होने वाले मांगलिक कार्यों में बाधाएं आती हैं। परिवार के सदस्यों पर अक्सर किसी प्रेम बाधा का प्रभाव बना रहना। घर में अक्सर तनाव और क्लेश रहना। इस पर अनेक प्रकार के उपाय करने पर भी परिवार के सभी सदस्यों को कई प्रकार की समस्याओं का सामना करना पड़ता है।

पितृदोष का प्रभाव कम करने के उपाय-

सनातन धर्म में ऐसा माना जाता है कि इहलौकक प्रसन्नता एवं सौभाग्य वृद्धि का कारण केवल पितृगणों पर ही आश्रित है एवं सनातन धर्म में अश्विन मास में कृष्ण पक्ष को पितृ पक्ष के नाम से जाना जाता है। पितर पक्ष में पितरों के निमित्त श्राद्ध और तर्पण करने का विधान है। ऐसी मान्यता है कि इस काल में पितृ गण यमलोक से धरती पर अपने परिवार और संत्तति का सुख-दु:ख देखने आते हैं एवं पूर्व जन्म कृत जातक वैसा सम्मान एवं सत्कार नहीं दे पाते जिसके परिणामस्वरूप पितृ गण रुष्ट होते हैं।

अत: जातक के लिये आवश्यक है कि पितृगणों की प्रसन्नता के लिये पितृ पक्ष में पूर्वजों के निमित्त विधि विधान से तर्पण और श्राद्ध करें। साथ ही पितृ पक्ष शांति के लिए रोजाना दोपहर के समय पीपल के पेड़ की पूजा करें। पितृ पक्ष में रोजाना घर में शाम के समय दक्षिण दिशा में तेल का दीपक लगाएं। ब्राह्मणों को प्रतीकात्मक गोदान, गर्मी में पानी पिलाने के लिए कुंए खुदवाएं या राहगीरों को शीतल जल पिलाने से भी पितृदोष से छुटकारा मिलता है। एवं पितृसूक्त का पाठ करे। अत: जिन लोगों की कुण्डली में पितृदोष व्याप्त हो, उन्हें पितृ पक्ष में पितृ सूक्त का पाठ

करना चाहिए। पुराणों में वर्णित पुरूष सूक्त का पाठ करने से पितृ गण प्रसन्न होते हैं तथा पितृदोष से मुक्ति प्रदान करते हैं। पितर पक्ष में श्राद्ध के दिन या सर्व पितृ सूक्त का पाठ करें। पितरों के निमित्त यथा शक्ति दान करना चाहिए, ऐसा करने से पितृ दोष से शमन हो सकता है।

इन्हीं संदर्भों में यजुर्वेद मे बताये हुए पितृसूक्त का संदर्भ यहां आवश्यकता जान पड़ती है एवं सूक्त निम्नाड्कित है। वैसे यह स्पष्ट करना उचित ही होगा कि पितृ सूक्त का उद्धरण हमें ऋग्वेद एवं पुराणों में भी मिलता है परन्तु सारल्य के साथ पठन हेतु निम्नांकित का सरलार्थ के साथ यहाँ मूल पाठ किया जा सकता है।

उदीरतामवर उत्परास उन्मध्यमाः पितरः सोम्यासः।
असुं य ईयुरवृका ऋतज्ञास्ते नोऽवन्तु पितरो हवेषु।।

नीचे, ऊपर और मध्यस्थानों मे रहने वाले, सोमपान करने के योग्य हमारे सभी पितर उठकर तैयार हों। यज्ञ के ज्ञाता सौम्य स्वभाव के हमारे जिन पितरों ने नूतन प्राण धारण कर लिये हैं, वे सभी हमारे बुलाने पर आकर हमारी सुरक्षा करें।

इदं पितृभ्यो नमो अस्त्वद्य ये पूर्वासो य उपरास ईयुः।
ये पार्थिवे रजस्या निषत्ता ये वा नूनं सुवृजनासु विक्षु।।

जो भी नये अथवा पुराने पितर यहाँ से चले गये हैं, जो पितर अन्य स्थानों में हैं और जो उत्तम स्वजनों के साथ निवास कर रहे हैं अर्थात् यमलोक, मर्त्यलोक और विष्णुलोक में स्थित सभी पितरों को आज हमारा यह प्रणाम निवेदित हो।

आहं पितृन्सुविदत्राँ अवित्सि
नपातं च विक्रमणं च विष्णोः।
बर्हिषदो ये स्वधया सुतस्य
भजन्त पित्वस्त इहागमिष्ठाः।।

(यजुर्वेद 19/49)

उत्तम ज्ञानसे युक्त पितरों को तथा अपांनपात् और विष्णु के विक्रमण को, मैंने अपने अनुकूल बना लिया है। कुशासनपर बैठने के अधिकारी पितर प्रसन्नतापूर्वक आकर अपनी इच्छा के अनुसार हमारे-द्वारा अर्पित हवि और सोमरस ग्रहण करें।

बर्हिषदः पितरं ऊत्य र्वागिमा
वो हव्या चकृमा जुषध्वम्।
त आ गतावसा शंतमेनाथा
नः शं योररपो दधात।।

(यजुर्वेद 19/50)

कुशासनपर अधिष्ठित होने वाले हे पितर! आप कृपा करके हमारी ओर आइये। यह हवि आपके लिये ही तैयार की गयी है, इसे प्रेम से स्वीकार कीजिये। अपने अत्यधिक सुखप्रद प्रसाद के साथ आयें और हमें क्लेश रहित सुख तथा कल्याण प्राप्त करायें।

उपहूताः पितरः सोम्यासो बर्हिष्येषु निधिषु प्रियेषु।
त आ गमन्तु त इह श्रुवन्त्वधि ब्रुवन्तु तेऽवन्त्वस्मान्।।

(यजुर्वेद 19/51)

पितरों को प्रिय लगने वाली सोमरूपी

निधियों की स्थापना के बाद कुशासन पर हमने पितरों को आवाहन किया है। वे यहाँ आ जायँ और हमारी प्रार्थना सुनें। वे हमारी सुरक्षा करने के साथ ही देवों के पास हमारी ओर से संस्तुति करें।

आच्या जानु दक्षिणतो

निषद्येमं यज्ञमभि गृणीत विश्वे।

मा हिंसिष्ट पितरः केन

चिन्नो यद्व आगः पुरुषता कराम।।

(यजुर्वेद 19/52)

बायाँ घुटना मोड़कर और वेदी के दक्षिण में नीचे बैठकर हे पितरो! आप सभी हमारे इस यज्ञ की प्रशंसा करें। मानव-स्वभाव के अनुसार हमने आपके विरुद्व कोई भी अपराध किया हो तो उसके कारण हे पितरो, आप हमें दण्ड मत दें (पितर बायें घुटना मोडकर बैठते हैं और देवता दाहिना घुटना मोडकर बैठना पसन्द करते हैं)।

आसीनासो अरुणीनामुपस्थे रयिं धत्त दाशुषे मर्त्याय।
पुत्रेभ्यः पितरस्तस्य वस्वः प्र यच्छत त इहोर्जं दधात।।

(यजुर्वेद 19/53)

अरुणवर्ण की उषादेवी अङ्क में विराजित हे पितर! अपने इस मर्त्यलोक के याजक को धन दें, सामर्थ्य दें तथा अपनी प्रसद्धि सम्पत्ति में से कुछ अंश हम पुत्रों को देवें।

ये सत्यासो हविरदो हविष्पा

इन्द्रेण देवैः सरथं दधानाः।

आग्ने याहि सहस्रं देववन्दैः

परैः पूर्वैः पितृभिर्घर्मसद्भिः।।

(यजुर्वेद 19/54)

कभी न बिछुडने वाले, ठोस हविका भक्षण करने वाले, द्रव हविका पान करने वाले, इन्द्र और अन्य देवों के साथ एक ही रथ में प्रयाण करने वाले, देवों की वन्दना करने वाले, घर्म नामक हविके पास बैठने वाले जो हमारे पूर्वज पितर हैं, उन्हें सहस्त्रों की संख्या में लेकर हे अग्निदेव! यहाँ पधारें।

अग्निष्वात्ताः पितर एह गच्छत

सदः सदः सदत सुप्रणीतयः।

अत्ता हवींषि प्रयतानि बर्हिष्यथा

रयिं सर्ववीरं दधातन।।

(यजुर्वेद 19/55)

अग्नि के द्वारा पवित्र किये गये हे उत्तमपथ प्रदर्शक पितर! यहॉ आइये और अपने-अपने आसनों पर अधिष्ठित हो जाइये। कुशासन पर समर्पित हविर्द्रव्यों का भक्षण करें और (अनुग्रहस्यरुप) पुत्रों से युक्त सम्पदा हमें समर्पित करा दें।

त्वमग्न ईलितो जातवेदोऽवाड्ढव्यानि

सुरभीणि कृत्वी।

प्रादाः पितृभ्यः स्वधया ते

अक्षन्नद्धि त्वं देव प्रयता हवींषि।।

(यजुर्वेद 19/56)

हे ज्ञानी अग्निदेव! हमारी प्रार्थना पर आप

इस हविको मधुर बनाकर पितरों ने भी अपनी इच्छा के अनुसार उस हविका भक्षण किया। हे अग्निदेव ! (अब हमारे-द्वारा) समर्पित हविको आप भी ग्रहण करें।

ये चेह पितरों ये च नेह

याँश्च विद्म याँ उ च न प्रविद्म।

त्वं वेत्थ यति ते जातवेद:

स्वधाभिर्यज्ञं सुकृतं जुषस्व।।

(यजुर्वेद 19/57)

जो हमारे पितर यहाँ (आ गये) हैं और जो यहाँ नही आये हैं, जिन्हें हम जानते हैं और जिन्हें हम अच्छी प्रकार जानते भी नहीं, उन सभी को, जितने (और जैसे) हैं, उन सभी को हे अग्निदेव! आप भलीभाँति पहचानते हैं। उन सभी की इच्छा के अनुसार अच्छी प्रकार तैयार किये गये इस हविको (उन सभी के लिये) प्रसन्नता के साथ स्वीकार करें।

ये अग्निदग्धा ये अनग्निदग्धा

मध्ये दिव: स्वधया मादयन्ते।

तेभि: स्वरालसुनीतिमेतां

यथावशं तन्वं कल्पयस्व।।

(यजुर्वेद 19/58)

हमारे जिन पितरों को अग्नि ने पावन किया है और जो अग्निद्वारा भस्मसात् किये बिना ही स्वयं पितृभूत हैं तथा जो अपनी इच्छा के अनुसार स्वर्ग के मध्य में आनन्द से निवास करते हैं। उन सभी की अनुमति से, हे रावराट् अग्ने! (पितृलोक में इस नूतन मृत जीवन के) प्राण धारण करने योगय (उसके) इस शरीर को उसकी इच्छा के अनुसार ही बना दो और उसे दे दो।

- वी.वी.बी.आई.एस. एण्ड आई. एस. पंजाब विश्वविद्यालय पटल,

साधु आश्रम, होशियारपुर।

ज्ञान और भक्ति में अन्तर

- विजयप्रकाश त्रिपाठी

गोस्वामी तुलसीदास ने ज्ञान और भक्ति दोनों को सांसारिक दु:खों से छुड़ाने वाला स्वीकार किया है, किन्तु उनकी दृष्टि में इन दोनों के मध्य कुछ अन्तर है, और उसके कारण सन्त लोग ज्ञान का उतना आदर नहीं करते जितना भक्ति का करते हैं। 'रामचरितमानस' में काक भुशुण्डी-लोमष संवाद में लोमष ऋषि ज्ञान का प्रतिपादन करते हैं, किन्तु भुशुण्डी जी उसका आदर न कर भगवान् की लीला-कथाएं सुनना चाहते हैं और भक्ति का रहस्य समझना चाहते हैं। गरुड़ जी उनसे ऐसा करने का कारण पूछते हैं।

भुशुण्डि जी के मत से ज्ञान और भक्ति के मध्य तीन अन्तर हैं। उन तीनों के कारण भक्ति अधिक आदरणीय है। वे प्रथम अन्तर नारी और पुरुष का करते हैं। ज्ञान, वैराग्य, योग आदि पुरुष वर्ग में आते हैं। जीव भी पुरुष है वह यदि विरक्त हुआ तो मायारूपी नारी का परित्याग कर सकता है, अन्यथा ज्ञान पुरुष होने के कारण माया नारी के मोहजाल में फँस जाता है।

भक्ति और माया दोनों नारी वर्ग के अन्तर्गत आती है। यदि हम भक्ति का सहारा लें तो माया के प्रभाव में न आकर हमारी रक्षा करेगी। एक नारी दूसरी नारी के रूप में उस प्रकार मोहित नहीं होती जैसे पुरुष हो जाता है। इस नियम को देखते हुए यदि हम अपने हृदय में भक्ति को स्थान दें तो फिर माया में हमारी आसक्ति नहीं हो सकती। यह तर्क भले ही कुछ छिछला लगे किन्तु अभ्यास में यह कारगर होता है।

भुशुण्डि जी ज्ञान और भक्ति का दूसरा अन्तर कुछ अधिक गम्भीर बताते हैं। वे कहते हैं कि भक्ति और माया दोनों ईश्वर की परम शक्तियाँ हैं, किन्तु उन्हें माया की अपेक्षा भक्ति अधिक प्रिय है। भक्ति के प्रति परमात्मा की अनुकूलता देखकर माया उससे भयग्रस्त रहती है। जीव के हृदय में भक्ति का वास देखकर माया उसके निकट जाने का साहस नहीं करती। इसलिए भक्त सदा माया से निर्भय रहता है। गोस्वामी जी का मत है कि परमात्मा का यह रहस्य शीघ्र किसी के भी समझ में नहीं आता है-

यह रहस्य रघुनाथ कर,
बेगि न जानइ कोइ।
जो जानइ रघुपति कृपा,
सपनेंहु मोह न होइ।।

ईश्वर, माया और भक्ति का यह तात्विक समबन्ध श्रीविष्णु पुराण में अति सुन्दरता से प्रस्तुत किया गया है। वहाँ भक्ति की उत्पत्ति

परमात्मा से मानी गई है। भगवान् नारद जी कहते हैं- सतयुग, त्रेता और द्वापर युगों में ज्ञान और वैराग्य भक्ति के साधन थे किन्तु कलयुग में तो मात्र भक्ति ही मोक्ष देने वाली है। यही विचार कर भगवान् ने सत्य स्वरूप से भक्ति की उत्पत्ति की।

इससे पूर्णतया स्पष्ट है कि सन्तों ने परमात्मा की दो मुख्य शक्तियां स्वीकार की हैं। माया परमात्मा की ही शक्ति है किन्तु परमात्मा से विपरीत लक्षण वाली है। परमात्मा सत्, चित और आनन्द स्वरूप है, किन्तु माया असत्, जड़ और दुःख स्वरूपा है। यह सर्व प्रसिद्ध है। भक्ति भी परमात्मा की शक्ति है, किन्तु वह अपने उपादान के अनुकूल स्वयं भी सत्, चित् और आनन्द स्वरूप है। इसी तथ्य को ध्यान में रखकर गोस्वामी तुलसीदास जी कहते हैं- **"भगतिहि सानुकूल रघुनाथा।"** ईश्वर और भक्ति समानधर्मी है। दोनों सच्चिदानन्द स्वरूप हैं। यही बात राध और कृष्ण के सम्बन्ध में है। दोनों ही परात्पर ब्रह्म के रूप है। एक भक्तिरूपा है और दूसरे भगवान् रूप। राध और कृष्ण में जैसा प्रेम है वैसा ही भक्ति और भगवान् में प्रेम है। राधा-रूपी भक्ति हृदय में आ गई तो उसके प्रेम में भगवान् भी आ जाएगें। यह रहस्य जानने वाला मनुष्य सदैव भक्ति का आदर करेगा और वह कभी मोह में नहीं पड़ेगा।

- 86/323, देवनगर, कानपुर - 208003
मो. 9234411083

आलोचना करना भी एक कला है

- कृष्णचन्द्र टवाणी

जब किसी व्यक्ति में कुछ कमियां नजर आती है या वह अपना कार्य सही ढंग से नहीं करता है तो उसकी आलोचना की जाती है। उसे डांटना भी पड़ता है। प्राय: लोग उसकी आलोचना सबके समाने करने में नहीं चूकते हैं। सबके समाने आलोचना करने से व्यक्ति हतोत्साहित हो सकता है तथा उसके मन में आलोचक के प्रति वैमनस्य भी उत्पन्न हो सकता है। आलोचना सही समय तथा सही ढंग से की जानी चाहिए, तभी उसका प्रभाव पड़ता है और जिसकी आलोचना कर रहे हैं उसमें सुधार हो सकता है। अत: आलोचना करते समय निम्न बातों को विशेष ध्यान में रखना चाहिए-

अकेले में आलोचना करें, दूसरों के समाने नहीं-

जब आप किसी आदमी में कोई कमी देखते हैं या उसकी गलती आपकी दृष्टि में आ जाती है तो आप धीरज रखिये। एकदम से आलोचना करने की जरूरत नहीं। मौका देखिये कि जब एकांत हो और आपके पास कोई न हो तभी उसको गलती समझा दीजिए।

मुस्कराहट के साथ मित्रता का अंदाज अपनायें:-

आखिर आप अपने सम्बन्धी या मित्र की आलोचना क्यों करते हैं? तो इसका प्रयोजन उसे नुकसान पहुँचाना नहीं है, बल्कि उसे सुधारना है। किसी व्यक्ति में जो गलती आपने देखी उसको बतायेंगे नहीं, उसमें सुधार नहीं होगा और वह तरक्की नहीं कर पाएगा। जब आपके मन में कोई वैर-भाव नहीं है, आपकी आलोचना में सुधार करने का लक्ष्य है तो हितैषी मित्र की भांति उसे बतलाना चाहिए। ऐसी आलोचना, आलोचना नहीं रह जाती, बल्कि सीख बन जाती है।

आलोचना करने से पहले गुणों की प्रशंसा करें-

अपनी कमी का उल्लेख हर एक को बुरा लगता है। किसी के दोष बताये कि उसके तन-बदन में आग लग जायगी, फिर चाहें वह उसे प्रकट करे अथवा न करे। आलोचना करने से पूर्व व्यक्ति के प्रशंसक बने। पहले उसकी कार्यकुशलता, स्वभाव, व्यवहार आदि के बारे में जो अच्छाईयां है उनका उल्लेख करें और इसके बाद जो कमी या भूल हो उसे बतावें। इस तरह उसे लगेगा कि आप उसके हितैषी हैं तथा उसको सुधार कर गुणवान बनाना चाहते हैं। अपना हित प्रत्येक व्यक्ति चाहता है उसके लिए वह हर बात

सुनने को तैयार भी हो सकता है।

रचनात्मक आलोचना करें -

आलोचना करने पूर्व सोचना चाहिए कि वास्तव में जिस कार्य के लिए आलोचना कर रहें वह सही है या नहीं ? आलोचना करते समय आपके दिमाग में यह भी होना चाहिए कि इस कमी या भूल का विकल्प क्या है? क्योंकि आपने कमी तो निकाल दी और उसके सुधार का तरीका नहीं बता पाये तो यह एक हास्यास्पद बात होगी। जिसकी आप आलोचना कर रहे है उसको लगेगा कि आप केवल गलती निकालने के लिए ही आलोचना कर रहे हैं। किसी ने कार्य गलत ढंग से किया है तो उसका सही ढंग क्या है? यह आपको मालूम होना चाहिए। तभी उसकी गलती बतलाना सार्थक होगा।

जिसकी आलोचना कर रहे हैं उसे यह स्पष्ट रूप से बतला देना चाहिए कि आलोचना द्वारा आप किसी भी प्रकार से उसके सम्मान को ठेस नहीं पहुँचाना चाहते हैं। बल्कि उसकी कमी को दूर करने के लिए तथा उसकी कार्यकुशलता बढ़ाने के लिए आलोचना कर रहे हैं, ताकि भविष्य में इस प्रकार की गलितयों की पुनरावृति न होवे एवं वह जीवन में सदैव अपने कार्य क्षेत्र में उन्नति की ओर अग्रसर होवे।

- सिटी रोड़, मदनगंज-किशनगढ़ (राज.) - 305801

ISSN 0505-7523

विश्वज्योति वर्षः ७२, सं. ११
फरवरी ,२०२४

श्रेष्ठता क्या है ?

- ऋषिमोहन श्रीवास्तव

आजकल सभी मनुष्य सोचते हैं कि वे ज्यादा योग्य व समझदार हैं, बाकी सब तो बेवकूफ और मूर्ख हैं। यांत्रिक-जीवन की इस आपा-धापी में व्यक्ति के अंदर संस्कार लोप हो रहे है। छोटे से छोटा बच्चा व बड़े से बड़ा बच्चा तक अपने माता-पिता की आज्ञा का सही रूप से पालन नहीं करता। कुछ अपवाद हो सकते हैं परन्तु ज्यादातर घरों में तो मैंने यही देखा और अनुभव किया है। बच्चे अपने से बड़ों का यथोचित-सम्मान व आदर नहीं करते। बातचीत में भी शिष्टाचार गायब और आचरण में तो और भी कमियाँ दृष्टिगत होती हैं।

आज श्रेष्ठता क्या है? या श्रेष्ठ पुरुष किसे कहा जा सकता है? यह विचार करने का प्रश्न है। इस विषय पर प्रत्येक मनुष्य को चिन्तन-मनन करना चाहिए ताकि वह अपने मानव-जीवन में कुछ श्रेष्ठ-कार्य कर सके या श्रेष्ठता से लोकप्रिय बन सकें। व्यक्तित्व बनाना, आज बहुत बड़ी चुनौती है। सिर्फ साफ-सुथरे, उजले कपड़े पहनकर आपका व्यक्तित्व महान् और गौरवपूर्ण नहीं बनता। आपके सम्पूर्ण व्यक्तित्व निर्माण के लिए बहुत-सी चीजें आवश्यक हैं। समाज और परिवार में आपका कैसा व्यवहार है? आप परिवार के सदस्यों के प्रति किस प्रकार का नजरिया या व्यवहार रखते हैं। संवेदनात्मक-तौर पर आप किस प्रकार के व्यक्ति हैं? आपका बोलने का तरीका, रहने का तरीका कैसा है? आप समाज में लोगों के साथ किस प्रकार का व्यवहार या बर्ताव रखते हैं?

जब आप परिवार के लोगों के साथ श्रेष्ठ व्यवहार रखेंगे अपनी जिम्मेदारियों और दायित्व से मुँह न मोड़ेंगे, तब आप परिवार में सबके चहेते बनेंगे। यह निश्चित मानिए जब आप परिवार में प्रिय होंगे, तभी सब लोग आपकी प्रशंसा करेंगे, आप समाज में लोकप्रिय बन सकते हैं। घर से ही आपका प्रथम सम्मान और प्रशंसा होनी जरूरी है।

कुछ लोग सोचते हैं उन्होंने तो बहुत सारा ज्ञान अर्जित कर लिया है, अब उन्हें कोई परास्त नहीं कर सकता। वे पूर्णतः ज्ञानी-पुरुष बन गए हैं। ये बिल्कुल गलत है। 'ज्ञान' जीवन की अंतिम सांसों तक सीखा जाता है। एक छोटा बालक भी आपको कुछ बातों के लिए मार्गदर्शन दे सकता है। वही मृत्यु शैया पर पड़ा व्यक्ति भी अपने जीवन के अनुभवों से आपको उचित ज्ञान दे सकता है। ज्ञान देने या लेने की कोई उम्र नहीं होती।

सीखने लायक कोई बात है तो हम किसी भी वर्ग या व्यक्ति से सीख सकते हैं। हमें सबसे पहले यह सोचना होगा- संसार में हर व्यक्ति समान है। वह न तो छोटा है और न बड़ा।

'श्रेष्ठ' वही है जो एक बच्चे से लेकर बुजुर्ग तक को यथेष्ठ सम्मान दे, सिर्फ अपने आपको महान् और ज्ञानी-ध्यानी मानना, जीवन की बहुत बड़ी भूल है। इससे आपकी प्रगति और सम्मान प्रभावित होते हैं।

- एस-1, नित्यानंद विला, कमलेश्वर कॉलोनी, जीवाजीगंज, लश्कर, ग्वालिया (म.प्र.) - 474001

रसवन्त रसा का हो तन-मन

- रामसेनीही लाल शर्मा 'यायावर'

माँ! बरसा दे करुणा के कण
रसवन्त रसा का हो तन-मन
अन्तर हो निर्विकार - निर्मल
बरसाये वाक सुधा अविरल।
उठे कण्ठ से रसस्विनी
नित हो मेधा से नवल सृजन
हो जब हथेलियों में कम्पन
उँगलियाँ रचे तब 'रामायण'।
कल्पना-हंसिनी भर उड़ान
नापे यह पूरा नील गगन।
बन जाय जगत ये त्रासहीन
मन हर मानव का हो अदीन
संस्कृति का मंदिर बने भव्य
शुचिता का मंगलमय दर्शन।
गरजे न कहीं दानवी दर्प
निर्विष हो कुण्ठित कलुष-सर्प
निर्विघ्न पूर्ण हो सन्त - यज्ञ
सन्नद्ध राम धनु का गर्जन
माँ बरसा दे करुण के कण
रसवन्त रसा को हो तन-मन।

- 86, तिलक नगर, बाईपास रोड, फीरोजाबाद - 283203।
मो. 94123-16779

कविता

एक जीवन में

– देवेन्द्र कुमार मिश्रा

फूल हैं, काँटे हैं,
तक़दीर के तमाशे हैं।
जिंदगी है क्या,
किसी के साथ किसी का
भद्दा मज़ाक है।
बचपन, जवानी, बुढ़ापा
भूख प्यास ज़रूरतों का इज़ाफ़ा
घुट-घुट कर जीने का।
जी-जी कर मरने का,
फिर भी साँसों की है पिपासा।
धूप है, छाँव है,
अजनबी गाँव है,
धूँआ है राख है।
ज़िंदगी है क्या,
बस ख़ाक ही ख़ाक है।
सुख-दुःख का खेल,
भावनाओं का निकलता तेल।
तन की मन की मायाबी जेल,
मौत की तरफ़ बढ़ता हर क़दम।
कभी क़िस्मत कभी कर्म
पाप-पुण्य का भरम।
सच कहूँ ज़िंदगी
तेरा तरीक़ा ही नापाक है,
एक जीवन में न जाने कितने
शमशान घाट हैं।

– राजुल ड्रीम सिटी, ए-29, फर्स्ट फ्लोर, अमखेड़ा रोड, जबलपुर (म.प्र.) 482004।
मो. 94254-05022

पारस खुश है

दर्शन सिंह 'आशट'

पारस के पिता जी एक प्रसिद्ध लेखक थे। उनके घर हर महीने कई पत्रिकाएँ आती थी। पिताजी की देखा देखी में पारस में भी लिखने की रुचि पैदा हो गई। वह अपनी छोटी-छोटी कवितायें और कहानियां लिखकर पिताजी को दिखाता रहता। जब उसकी एक छोटी सी कविता एक बाल पत्रिका में छापी तो उसके पाँव धरती पर नहीं लग रहे थे। अगले महीने जब उसे पचास रुपये का पारिश्रामिक भी मिला तो उसकी खुशी का कोई ठिकाना न रहा।

पारस सोचने लगा कि यदि उसकी एक कविता छपने से उसे पचास रुपये मिल सकते हैं तो वह हर महीने कई-कई कविताएँ और कहानियाँ लिख सकता है।

पारस अब जल्दी-जल्दी छपने की चाह में पिता जी को अपनी लिखी रचना भी न दिखाता बल्कि सीधा ही संपादक को छपने के लिए भेजने लगा। पिताजी को यह भी न बताता कि उसने कौन सी रचना किस पत्रिका में भेजी है।

कुछ दिनों के पश्चात् पारस की दो रचनायें वापिस आ गईं। यह देखकर पारस को बड़ा दु:ख हुआ। वह तो क्या सोच रहा था और हुआ क्या?

अब पारस के मन में एक योजना आई। वह जानता था कि बाजार में एक बुक स्टॉल है जहां बच्चों की कुछ पत्रिकायें मिलती हैं। वह बुक स्थल पर गया और वहां से बाल पत्रिकाओं के कुछ पुराने अंक खरीद लाया। वह सोचने लगा कि जिस संपादक महोदय को वह अपनी रचना छपने के लिए भेजता है उन्हें क्या पता कि यह रचना किसी और कौन सी पत्रिका में छपी है?

पारस ने एक अच्छी कहानी को चुना और हू बहू उसका उतारा करके एक बाल पत्रिका के संपादक को भेज दी।

कुछ दिनों के पश्चात् पारस के घर में पिता जी के नाम पर एक पत्रिका आई। पारस उसे सहजा ही खोलकर पढ़ने लगा। उसकी दृष्टि एक पृष्ठ पर मोटे अक्षरों में लिखे शब्द 'चेतावनी' पर पड़ी। वह उसे पढ़ने लगा। लिखा था कि उस पत्रिका में किसी लेखक के अपने नाम पर एक कहानी छपी है जबकि वह कहानी किसी और पत्रिका से चुराकर भेजी गई थी। उस कहानी के मूल लेखक ने पत्रिका के संपादक को शिकायत की थी कि यह तो उसकी अपनी कहानी है जो फलां पत्रिका के फलां अंक में प्रकाशित हो चुकी है। चेतावनी में यह भी लिखा हुआ था कि कहानी चुराकर भेजने वाले लेखक को आगे से 'ब्लैक लिस्ट'

किया जा रहा है।

'ब्लैक लिस्ट?'' यह शब्द पढ़ कर पारस गहरी सोच में पड़ गया। सोचने लगा कि इसका मतलब क्या होता है?

शाम को पिता जी ऑफिस से लौटे तो पारस उनके पास आया और पूछने लगा, ''पिता जी, 'ब्लैक लिस्ट' का क्या मतलब होता है?''

''क्यों, क्या बात हो गई?'' पिता जी ने उसे पूछा।

''नहीं, पहले बताओ। इस का क्या मतलब होता है?'' पारस पूछने लगा।

पारस के पिता जी अनुभवी लेखक तो थे। उन्होंने अंदाजा लगा लिया कि पारस ने जरुर ही कोई गड़बड़ कर दी है।

पिता जी उसकी बात का उत्तर देते हुए बोले, ''जब कोई व्यक्ति किसी लेखक की रचना की नकल करके अपने नाम पर किसी पत्र-पत्रिका में प्रकाशित करवाता है तो उसे 'साहित्यक चोरी' कहा जाता है। पता लगने पर उस पत्रिका के संपादक, चोरी करके अपने नाम पर रचना छपवाने वाले लेखक की किसी भी रचना को भविष्य में कभी नहीं छापते। भले ही उसने खुद ही क्यों न लिखी हो। अंग्रेजी में इस 'ब्लैक लिस्ट' का नाम दिया जाता है।''

यह सुनकर पारस मन ही मन कांपने लगा। पारस ने पिता जी को असलियत बताना ही ठीक समझा। उसने पिता को सारी बात सच-सच बता दी। पिता जी ने उसे प्यार भरी डाँट पिलाकर आगे से ऐसा करने से मना किया और खुद उसके हाथों से संपादक जी को पत्र लिखवाया जिसमें हुई गल्ती की माफी माँगी गई थी और रचना वापिस लौटाने के लिए निवेदन किया गया था। अगले सप्ताह ही पारस को एक लिफाफा प्राप्त हुआ। उसने खोल कर देखा तो उसे चैन की सांस आई। यह वही रचना थी जो उसने किसी अन्य पत्रिका से चुराकर अपने नाम पर छपने के लिए भेजी थी।

पारस को लगा जैसे उसके मन से एक बड़ा बोझ उतर गया है और उसे सही रास्ता मिल गया है और वह रास्ता है कि भविष्य में वह खुद ही लिखेगा और अपने पिता जी को दिखाकर ही पत्रिका में छपने के लिए भेजेगा।

अब पारस पिता जी को खुद अपनी लिखी कोई रचना दिखाता है। पिताजी उस रचना की गल्तियाँ निकालकर उसे कुछ और सुंदर बना देते हैं।

पारस अब खुश है।

- पंजाबी विश्वविद्यालय कैम्पस, पटियाला - 147002।
मो. 98144-23703

पुस्तक-समीक्षा

पुस्तक का नाम - विनय-सप्तक, आचार्य भानुदत्त त्रिपाठी 'मधुरेश'
प्रकाशक - सतीश कुमार गुप्ता, जोगियाना, लोरपुर रोड, शहजादपुर-अकबरपुर,
- 224122 (उ.प्र.)
संस्करण - प्रथम
मूल्य - ४०/- रूपये
सम्पर्क - 'साहित्य मण्डप' (दीनबन्धु आश्रम), चन्द्रलोक कालोनी, शहजादपुर, अकबरपुर - 224122 अम्बेडकर नगर (उ.प्र.)

लेखक की यह कृति - 'विनय सप्तक' वैदिक सिद्धान्त 'एकोऽहं बहु स्याम' पर आधारित है। सर्व व्यापक पर ब्रह्म निर्गुण (निराकार) होता हुआ भी सगुण (साकार) रूप में विद्यमान होने से नितान्त ध्येय है, उपासना योग्य है। क्योंकि वह सर्वशक्तिमान है। शक्ति उससे भिन्न नहीं अपितु अभिन्न है। उपाधि भेद से हम उसे पर-अपर, विद्या-अविद्या आदि भेदों से पुकारते हैं ; जैसे उमा, लक्ष्मी, सरस्वती, राम, कृष्ण, शिव इत्यादि रूप से अपने अपने संस्कारों से, वासनाओं के परवश होकर उस ईश्वरीय शक्ति को भजते हैं।

उपयुक्त विवरण के आलोक में ही लेखक ने उस परेमेष्ठी की कृपा से स्वकल्याण और परकल्याण हेतु उन उन दिव्य शक्तियों की उपासना के लिए हिन्दी तथा संस्कृत भाषाओं में सात विनय (प्रार्थनायें) लिखने का प्रयास किया है।

विनय-सप्तक के नामकरण से स्पष्ट ज्ञात हो जाता है कि इस पुस्तिका में सात स्तोत्र हैं जो महालक्ष्मी, महासरस्वती, महाकाली, श्रीजानकी, श्रीराधा, श्रीअन्नपूर्णा और श्रीतुलसी पर आधारित हैं।

उक्त आराध्य देवियों की साङ्गोपाङ्गस्तुति न केवल हिन्दी पद्यों में अपितु संस्कृतानुरागियों को भी ध्यान में रखकर संस्कृत भाषा में स्तोत्र रूप में प्रस्तुत किये गये हैं। एतदर्थ लेखक का यह प्रयास नितान्त श्लाघ्य है।

सभी आराध्य देवियों की आरतियाँ भी साथ में देकर सगुण ब्रह्म की उपासना का मार्ग प्रशस्त कर दिया है - ऐसा मेरा मानना है।

- प्रो. प्रेम लाल शर्मा, सह-सम्पादक, विश्व ज्योति,
वी. वी. आर. आई, साधु आश्रम, होशियारपुर।

संस्थान-समाचार

दान-

Dr. Ashwani Juneja, Hoshiarpur.	1100/-
Shri Rakesh Butt, Hoshiarpur.	500/-
Wg. Cdr. S.R. Lakshminarayanan, Pollachi	5000/-
Sun Shine Components Pvt. Ltd., Hoshiarpur.	11000/-
Dr. N. K. Uberoi, New Delhi.	20000/-
Dr. B. K. Kapila, Hoshiarpur.	2100/-
Shri Bharat Sud, Hoshiarpur.	2500/-
Adv. Dev Brat Sharma, Jalandhar	10000/-
Shri Lalit Kaushal, Dasuya, Hoshiarpur..	2000/-

हवन-यज्ञ - विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान के कार्य-दिवस का शुभारम्भ प्रतिसप्ताह के प्रथम दिन सत्संग-मन्दिर में हवन-यज्ञ से किया जाता है।

"महाभारत के आख्यान"

(अप्रैल-मई तथा जून-जुलाई 2024)

मान्यवर महोदय / महोदया,

सादर नमस्कार। आपको नव वर्ष की शुभ कामनाएँ।

यह लिखते हुए प्रसन्नता हो रही है कि यह संस्थान गत 73 वर्षों से राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रसार तथा प्रचार में निरन्तर प्रयत्नशील है। अत: संस्थान **विश्वज्योति** मासिक हिन्दी पत्रिका के माध्यम से भारत के विभिन्न प्रान्तों एवं नगरों में विद्यमान हिन्दी-प्रेमी विद्वानों के द्वारा समय-समय पर भेजे गए लेख, कविता आदि सामग्री को विश्वज्योति में प्रकाशित करके न केवल साधारण पाठकों को, अपितु हिन्दी के प्रति रुचि रखने वाले सभी पाठकों को लाभान्वित भी करता आ रहा है। **विश्वज्योति** पत्रिका का सम्प्रति हिन्दी-पत्रिकाओं में अपना एक विशिष्ट स्थान है, शैक्षणिक लेखों को प्रकाशन- हेतु भी यह पत्रिका यू.जी.सी. (PEER REVIEWED) द्वारा मान्यता प्राप्त है; जिसका श्रेय इसमें प्रकाशित विद्वान् लेखकों को जाता है। इसमें प्रकाशित लेख साहित्यिक, सामाजिक, सांस्कृतिक तथा अन्य सभी प्रकार के पहलुओं पर प्रकाश डालते हैं। जैसा कि सभी जानते हैं कि स्थाई-साहित्य किसी भी देश की धरोहर होती है। इसी बात को ध्यान में रखते हुए हर वर्ष इस पत्रिका के दो विशेषाङ्क **(अप्रैल-मई और जून-जुलाई २०२४)**में प्रकाशित किए जाते हैं, जो स्थाई साहित्य के रूप में समालोचकों, अनुसन्धाताओं और विद्वानों के लिए उपयोगी होते हैं।

आज की परिस्थितियों को देखते हुए इस वर्ष के लिए परामर्शक मण्डल द्वारा निश्चय किया गया है कि **"महाभारत के आख्यान"** पर विशेष-अङ्क प्रकाशित किये जायें। जैसा कि आपको विदित ही है कि साहित्यदर्पणकार आदि साहित्य शास्त्रियों के मतानुसार 'आख्यान' पूर्ववृत्तोक्ति अर्थात् किसी पुरानी कहानी की ओर संकेत/निर्देश करना- सोऽयमरातिशोणितजलैर्यस्मिन् ह्रदः पूरिताः- वेणी ३/३१, अथवा कथा कहानी विशेषरूप से काल्पनिक या पौराणिक उपाख्यान-अप्सराः पुरुरवसं चकम इत्याख्यानविद आचक्षते-मनु. ३/२२३- इत्यादि उद्धरणों से स्पष्ट है कि आख्यान और उपाख्यान में कोई विशेष भेद तो नहीं है, फिर भी 'आख्यान' शब्द से यहाँ तात्पर्य है पूर्व घटित घटना का वर्णन- उपाख्यानैर्विना तावद् भारतं प्रोच्यते बधैः- महाभारत, और उपाख्यान का अर्थ है-छोटी कथा या गल्प अथवा आख्यायिका द्रष्टव्य- 'प्रश्नाख्यानयोः' पा. ८/२/१०५, भेदक धर्म। आशा है आप इस विषय को आधार बनाकर अपने विचार **लेख के** माध्यम से भेजकर कृतार्थ करेंगे। कृपया लेख,कविता आदि सामग्री यथाशीघ्र संचालक के नाम संस्थान के कार्यालय में भेज दीजिएगा। आप द्वारा रचित मौलिक, नवीन एवं उच्चस्तरीय लेख की प्रतीक्षा रहेगी। हमारी बलवती इच्छा है कि आप सरीखे सुधी जनों के बहुमूल्य विचारों से **विश्वज्योति** के पाठक लाभान्वित हों।

* मान्यवर लेखकों से निवेदन है कि लेख अधिक से अधिक ५/६ पृष्ठ का होना चाहिए।
* लेख की भाषा तथा भाव आक्षेप रहित हों।
* वह लेख पहले कहीं छपा न हो।
* आपकी सुविधाहेतु कतिपय शीर्षक अग्रिम पृष्ट पर दिए जा रहे हैं। आप इनसे अतिरिक्त शीर्षक को माध्यम बनाकर भी लेख भेज सकते हैं।
* लेख १५ फरवरी तक **संचालक, वी.वी. आर. आई, साधु आश्रम, होशियारपुर** के नाम भेजने की कृपा करें।

भवदीय,

(इन्द्रदत्त उनियाल)

संचालक

विशेष :- लेखकों के दिग्दर्शनार्थ निम्नलिखित महाभारतीय आख्यान सन्दर्भ दिये जा रहे हैं -

क. जनमेजय को 'सरमा' का श्राप

ख. रुरु-डुण्डुभ संवाद

ग. समुद्रमन्थन

घ. उच्चैःश्रवा की पूंच्छ को काली बनाने में रहस्य

ड. कच द्वारा देवयानी का विवाह सम्बन्धी अनुरोध ठुकराना

च. अष्टक-ययाति संवाद

छ. कौरवों की उत्तराखण्ड यात्रा

ज. बन्दी और अष्टावक्र का शास्त्रार्थ

झ. रावण और सीता जी के मध्य संवाद

ञ. तपस्वी ब्राह्मण द्वारा कुन्ती को मन्त्रोपदेश

ट. कणिक का धृतराष्ट्र को कूटनीति का उपदेश

ठ. सरिताओं और समुद्र के मध्य संवाद

ड. आङ्गरिष्ठ और कामन्द का पुनरुत्थान विषयक संवाद

ढ. शत्रु से आक्रान्त राष्ट्र कर्तव्य से सम्बद्ध बिडाल और चूठे का आख्यान

ण. आत्मकल्याण के इच्छुक पिता-पुत्र के मध्य संवाद

त. नारायण सम्बन्धी उपाख्यान

थ. नागराज तथा ब्राह्मण का संवाद

द. पाञ्चरात्र की उत्पत्ति का आख्यान

सत्संग मन्दिर

संस्थान यज्ञशाला

वी. वी. आर. आई. सोसाईटी, होश्यारपुर (पंजाब) की ओर से प्रकाशक व मुद्रक
प्रो. इन्द्रदत्त उनियाल द्वारा वी. वी. आर. इन्स्टीच्यूट प्रैस, पो. आ. साधु-आश्रम,
होश्यारपुर से छपवा कर, वी. वी. आर. इन्स्टीच्यूट, पो. आ. साधु-आश्रम,
होश्यारपुर-१४६ ०२१ (पंजाब) से २८-१-२०२४ को प्रकाशित।